नाटक

लेखक व प्रकाशक—

'कथावाचस्पति'

पं० राधेश्याम कविरत्न

अध्यक्ष—

प्रथमबार २०००] सन् १९३९ ई० [मूल्य १)

PRINTED BY RAM NARAYAN PATHAK, AT THE SHRI RADHEY SHYAM PRESS, BAREIL

संक्षिप्त निवेदन

कथावाचस्पति प० राधेश्याम कविरत्न ने यह नाटक सन् १६१६ में लिखना शुरू किया था। किन्तु अनवकाश के कारण वे इसको अब तक पूरा नहीं कर सके। इधर प्रति वर्ष नाटक-प्रेमियों की मांग थी कि उसे जल्द से जल्द पूरा किया जाय। आखिर आज यह शुभ दिन आया कि नाटक पूरा होकर प्रकाशित हो रहा है।

इसमें तो संदेह नहीं कि यह नाटक पौराणिक है। परन्तु पौराणिक होते हुए भी यह आधुनिक समय के लिए उपयुक्त है। सती-पार्वती और भगवान् शंकर का चरित्र-चित्रण निस्संदेह इस नाटक का मुख्य सौन्दर्य है जिसे पाठक पढ़कर खुद अनुभव करेंगे। नारद और कविराय भी अपने अपने रंग में खूब हैं। आशा है कि नाटक प्रेनियों के साथ साथ हिन्दी भाषा भाषी भी इसे अपनायेंगे और हमारे परिश्रम को सफल बनायेंगे।

बरेली।
ज्येष्ठ दशहरा, १६६६

निवेदक—
मैनेजर—श्रीराधेश्याम पुस्तकालय,

पुरुष

भगवान् शिव—महादेव।

भगवान् राम—भगवान् विष्णु के प्रसिद्ध अवतार।

लक्ष्मण—भगवान् राम के छोटे भाई।

भगवान् ब्रह्मा—संसार के उत्पादक।

नारद—ब्रह्मा के पुत्र।

इन्द्र—देवताओं का राजा।

काम—प्रसिद्ध देवता।

दक्ष—ब्रह्मा के पुत्र प्रजापति।

धनपति—दक्ष के एक मन्त्री।

कविराय—दक्ष के दर्बारी कवि।

दिगम्बर—एक कीर्तनकार।

शेखर—दिगम्बर का पुत्र।

बुधुआ—कविराय का नौकर।

रावण—लंका का राजा।

हिमाचल—पार्वती के पिता।

इनके अतिरिक्त-नट, नवग्रह, कविगण, देवगण, शिवगण, दर्बारी आदि।

स्त्री

सती—दक्ष-पुत्री	}	शंकर की अर्द्धाङ्गिनी दो जन्मों
पार्वती—हिमाचल पुत्री	}	में दो नाम से।

सीता—भगवान् राम की अर्द्धाङ्गिनी।

प्रसूति— सती की माता।

रति—कामदेव की स्त्री।

प्रतिमा—कविराय की स्त्री।

इनके अतिरिक्त नटी, सखियें, अप्सरायें, आदि।

स्थान—

कंखल, कैलास, हिमालय, दण्डक-वन (पंचवटी)

मङ्गलाचरण

(इस दृश्य को नाटक की प्रस्तावना समझिए)

प्रार्थना-गान । (१)

नट आदि—

जय शिवशङ्कर, जय शशिशेखर, जय पूर्णेश्वर, जय अखिलेश्वर,
जय सिद्धेश्वर, जय सर्वेश्वर, नमो नमो श्रीविश्वेश्वर ।
गिरिजा के पति, विपतिहर, प्रतिपालक, परमेश ।
भयहारी, भवनाथ, विभु, भक्तभरण, भूतेश ।
जय भुवनेश्वर, महामहेश्वर, नमो नमो श्रीविश्वेश्वर ।

—o—

नट—

जय महिमामय, जय मायामय, जय मङ्गलमय, मदनारी ।
जय त्रिगुणात्मक, जय त्रिभुवनपति, जय त्रिपुण्ड-धर, त्रिपुरारी ॥
जय करुणाकर, जय गुणआगर, जय सुखसागर, दुखहारी ।
जय जनरञ्जन, जय भयभञ्जन, जय खलगञ्जन, अविकारी ।

एक बालिका—गणों में सबसे पहले कौन पूजे जाते हैं ?

नट—गणेश ।

दूसरी बालिका—और देवताओं में सबसे बड़े कौन माने जाते हैं ?

नट—महेश । जिस तरह सब पर्वतों में कैलास पर्वत का ऊचा स्थान है—उसी तरह समस्त देवों में महादेव का अधिक मान है । यही कारण है कि सृष्टि के आदि से लेकर आज तलक—आर्य्य जाति में—"हर हर महादेव" का गान है :—

अब भी काशीधाम, मुक्ति का धाम शास्त्र बतलाता है ।
अब भी काशीनाथ विश्व का नाथ सदा कहलाता है ॥
सनातनी जनता रहती है जिन जिन नगरों, ग्रामों में ।
अब भी पूजा-हेतु शिवाला वहाँ बनाया जाता है ॥

एक बालिका—धन्य, इसीलिए आपने भी आज नाटक के आरम्भ में—देवाधिदेव महादेव का मङ्गलाचरण किया है !

नट—हाँ—तुमने ठीक समझा ।

दूसरी बालिका—आपने जब शिव को मनाया है तो शिव की अर्द्धाङ्गिनी श्रीपार्वती जी को कौन मनाएगा ?

नटी—(प्रवेश करके) शिव की अर्द्धाङ्गिनी को ? शिव के मनानेवाले की अर्द्धाङ्गिनी मनाएगी।

नट—आओ प्रिये, आओ, तुमने ठीक कहा। मैं जब शिव को मनाऊँगा, तो तुम अवश्य पार्वती जी को मनाओगी। हिन्दू-स्त्री का ऊँचे से ऊँचा पातिव्रत धर्म भी यही है कि वह पुरुष के नाते से-बड़े से बड़े देवता पर भी-आँख न उठाएगी। पुरुष-अगर देवता को मनाएगा, तो वह देवी को मनाएगी। परन्तु-प्यारी, तुम हमारी अर्द्धाङ्गिनी हो; अर्द्धाङ्गिनी होने के विचार से तुम हमसे पृथक् नहीं हो सकती हो, इसलिए आओ, महाकवि कालिदास के शब्दों में-हम और तुम-दोनों मिलकर-सम्मिलित उपासना करलें,—

> वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये ।
> जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥

नटी—धन्य ! यह तो आप ख़ूब सोचकर लाए !

पहली बालिका—इस श्लोक का अर्थ तो बतलाइए ?

नट—अर्थ ? इस श्लोक में भारत का महाकवि कहता है कि-"पुस्तक लिखने के पहले हमें वाणी और अर्थ की आवश्यकता है, इसलिए हम शिव और पार्वती का स्मरण करते हैं। कैसे हैं शिव और पार्वती ? वाणी और अर्थ की तरह मिले हुए। तो वाणी और अर्थ की तरह मिले ए शिव और

पार्वती का स्मरण, हम इसलिए करते हैं-कि हमें वाणी और अर्थ की सिद्धि प्राप्त हो"।

नटी—धन्य, मैं समझ गई। आज आपके हृदय में-शिव और पार्वती जी का जो इतना अधिक मान है, इसका कारण यही है कि शिव और पार्वती का चरित्र ही नाटक के रूप में खेलने का शायद 'ध्यान है!

नट—क्यों न समझोगी? अर्द्धाङ्गिनी हो न?

नटी—एक बात कहूंगी। नाटक में चरित्र-शिव और पार्वती किसी का भी प्रधान रूप से दिखाया जाय; परन्तु नाटक का नाम 'शिव-पार्वती' न रखकर, 'सती-पार्वती' रक्खा जाय।

नट—क्यों, ले आईं न अपनी स्त्री-जाति को ऊँचा रखने की बात? अच्छा यही सही। पहले कैलास का दृश्य नहीं दिखाएँगे। उस जगह से अपना नाटक उठाएँगे जहाँ कि-श्रीब्रह्माजी महाराज ने-अपने प्यारे पुत्र दक्ष को प्रजापति बनाया, और मदान्ध दक्ष ने भगवान् शङ्कर का अपमान किया।

एक बालिका—आगे चलकर?

नट—यह बताएँगे कि भूतभावन भगवान् शङ्कर की महा-शक्ति ने दक्षपुत्री सती बनकर किस प्रकार दक्ष से बदला लिया।

नटी—तब तो ठीक है-दक्षपुत्री सती ही इस नाटक की प्रधान पात्री कहलाएगी।

नट—हाँ-किस प्रकार सती का शङ्कर से प्रेम हुआ-किस प्रकार स्वयम्वर में सती ने शङ्कर को वरमाला पहनाई-यह सब कथा पहले ही अङ्क में दिखलाई जाएगी।

एक बालिका—और दूसरे अङ्क में ?

नट—सीता-वेश बनाने के कारण शङ्कर द्वारा सती का त्याग और फिर दक्ष के यज्ञ में सतीदाह।

दूसरी बालिका—अन्त में ?

नट—अन्त में ? पार्वती के नाम से उसी महाशक्ति सती ने जिस प्रकार अपने प्राणपति शङ्कर को प्राप्त किया वह कथा आएगी, और उसी समय इस-सुखान्त नाटक पर यवनिका गिराई जाएगी।

नटी—धन्य-यही मैं भी चाहती थी।

नट—तो तैयार होजाओः-

नटगण के रङ्गथल पै नटराज को लाना है।
नर की तरह चरित अब ईश्वर का दिखाना है॥
हर दृश्य में, हम सबको यह बात निभाना है—
यह गीत है ईश्वर का, भगवान का गाना है॥
भगवान् ही के बल पर हम खेल जोड़ते हैं।
जिनकी कथा है, खुद को उन पर ही छोड़ते हैं॥

गाना (२)

सब—

भगवान् अपना भारत फिर भाग्यवान होवे ।
भण्डार सम्पदा का, विद्या की खान होवे ॥
भूला हुआ है तुमको सदियों से यह विचारा ।
वरदान दो–तुम्हारा फिर इसको ध्यान होवे ॥
गिरजा सी नारियाँ फिर घर घर यहाँ प्रकट हों ।
हर एक नर यहाँ का शङ्कर समान होवे ॥
आशीर्वाद हमको यह 'राधेश्याम' देना—
हम क्या हैं और क्या थे, बस इतना ज्ञान होवे ॥

—०—

(सबका जाना)

पहला अङ्क
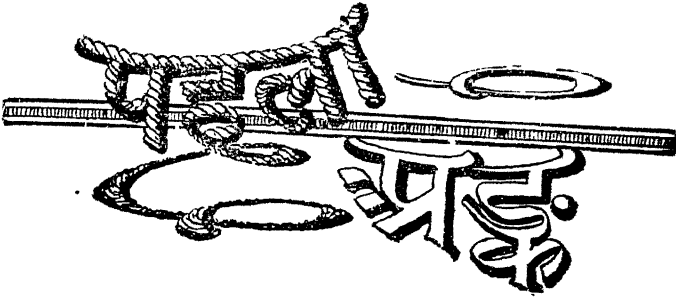
वीर अभिमन्यु

इस नाटक का मूल्य १)

स्थान—दक्ष प्राजपति के प्रजापति-पद प्राप्त करने का दर्बार
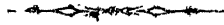
नारद—(प्रवेश करके, स्वगत) नारायण, नारायण, आज तक सृष्टि बनाने का काम पिता श्रीब्रह्माजी महाराज ने किया; अब वे शायद उकता गये हैं, इसीलिए तो भाई दक्ष के कन्धों पर बोझ डालकर अपने लिए इस कार्य्य से पृथक कर रहे हैं। पर, भूल रहे हैं—पिता जी, आप भूल रहे हैं। स्नेह के कारण, अथवा संसार की उन्नति के कारण, दक्ष को जो आप प्रजापति बना रहे हैं—इसमें आप भूल रहे हैं। क्योंकि दक्ष होने पर भी दक्ष के स्वभाव में अहंकार की मात्रा ज्यादा है। शान्ति के साथ काम करने की अपेक्षा, क्रोध और चञ्चलता ज्यादा है :—

राज के लायक़ वही है, नीति की जो खान हो।
धीर हो, गम्भीर हो, बलवीर हो, विद्वान हो॥
क्या करेंगे राज वे—ओछी तबीयत जिनकी है।
दूसरों पर क्या—न खुद पर भी हुकूमत जिनकी है॥

यह लो,-पिता जी आरहें हैं, बोलो-श्री ब्रह्माजी महाराज की जय। (ब्रह्मा जी का इन्द्र, बृहस्पति, वरुण, कुवेर आदि के साथ आकर यथास्थान बैठ जाना) यह लो-दक्ष भी आगये; बोलो-श्रीदक्ष महाराज की जय।

(दक्ष का अपने साथी धनपति और कविराय के साथ आना और यथास्थान बैठना)

गाना (३)

गायिकाएँ—

जुग-जुग जीवें श्रीमहाराज।
सूर्य्य-चन्द्र-सी आभा वाला, रहे दमकता ताज॥
राजा का सभी प्राणियों में ऊँचा पद माना जाता है।
राजा इस पृथ्वी-मण्डल पर ईश्वर का अंश कहाता है॥
इसीलिए कवि, गायक सर्व।
किन्नर, यक्ष, देव, गन्धर्व॥
शीस झुकाते नृप को आज।
जुग-जुग जीवें० ॥

—:—

ब्रह्मा—प्रिय इन्द्र, अग्नि, वरुण, कुवेर आदि देवताओ, संसार की उन्नति के लिए-सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य्य मैं आज से चिरजीवी दक्ष को सौंपता हूँ। आप सब की क्या राय है?

इन्द्र—दक्षराज सब प्रकार इस पदवी के योग्य हैं।

वरुण—बुद्धिमान हैं।

कुवेर—बलवान हैं।

धनपति—गुणवान हैं।

कविराय—और सब से बड़ी बात यह है कि-कविता के रसिक और विद्वान हैं।

ब्रह्मा—तो बस,-

मर्त्यलोक के यही आज से राजा समझे जायेंगे।
अपनी दिव्य कला से जग में सृष्टि नई उपजायेंगे॥
तिलक, मुकुट, जयमाल-सहित इनको गद्दी दी जाती है।
सब के सम्मुख आज प्रजापति की पदवी दी जाती है॥

(ब्रह्मा का दक्ष के तिलक लगाना, मुकुट पहनाना, माला गले में डालना और सिंहासन पर बिठला कर प्रजापति का पदक पहनाना।)

सब—जय, जय, प्रजापति श्रीदक्षराज की जय!

कविराय,—

छत्रन के छत्र, छत्रधारी छेक छत्रपति,
छत्र की हो छाया, छवि छटा छाजती रहे।
राजन के राज राजमान राज-राजेश्वर,
राज, राजधानी, राजगद्दी, राजती रहे।

भूपन के भूप, भावभरे, भाग्यवान भीम,
भुजन के भय भावी भीति भाजती रहे।
वीरन के वीर, वीरसेन, वीरभद्र, वीर,
वीरता की वीणा वीथी-वीथी बाजती रहे।

इन्द्र—आज के उत्सव मे प्राय: सभी देवताओं के दर्शन पाये; परन्तु यह नहीं समझ में आया कि भगवान् शङ्कर अभी तक क्यों नहीं आये ?

ब्रह्मा—हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ।

नारद—(स्वगत) और मैं भी यही सोच रहा हूँ :—

सदा शिव तो सदा शिव हैं, निरंजन धाम है उनका।
जहाँ पर मोह-लीला हो, वहाँ क्या काम है उनका॥

दक्ष—पिताजी, मेरी राय में तो शङ्कर इस उत्सव में आयेंगे ही नहीं।

ब्रह्मा—क्यों ?

दक्ष—क्यों कि उन्हें मेरा प्रजापति बनना नहीं भाता। किसी भी आत्मसेवी को पराया सुख नहीं सुहाता।

ब्रह्मा—नहीं, शङ्कर ऐसे नहीं हैं। उनके ऊपर ऐसा कटाक्ष करना, पाप है। कोई कारण हो गया होगा–जिससे अब तक नहीं आये।

धनपति—कहीं मसानों में घूम रहे होंगे।

कविराय—या भंग पीकर झूम रहे होंगे।

नारद—(स्वगत) नये प्रजापति के यह दोनों मंत्री बड़े समझदार हैं, (सामने देखकर, प्रकट) यह लीजिए-बड़ी उम्र है; याद करते ही शङ्कर जी भी आ पहुंचे; बोलो-भगवान शङ्कर की जय।

(शङ्कर का प्रवेश)

ब्रह्मा,—पधारिए, देवाधिदेव महादेव, पधारिए। इतनी देर का कारण ?

शङ्कर,—केवल सच्चिदानन्द का स्मरण। आज समाधि में इतना लीन हो गया कि यहाँ आने का समय ही ध्यान से उतर गया।

दक्ष,—हां महाराज, समाधि तो सृष्टिकर्त्ता के राजतिलक से भी बड़ी चीज़ है!

नारद—(स्वगत) नये प्रजापति की बुद्धि का पहला पर्दा खुला!

धनपति—परन्तु, समाधि के रँगीले, आप यह नहीं सोचते कि आपके विलम्ब से प्रजापति का अपमान हुआ!

शङ्कर—अपमान ? कदापि नहीं। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जान-बूझकर या किसी बुरे विचार से मैंने देर नहीं की, समाधि ही के कारण ऐसा हुआ। इतने पर भी यदि दक्ष महाराज इस विलम्ब से अपमान समझते हों, तो मैं क्षमा माँगने को तैयार हूँ।

दक्ष—क्षमा ? कदापि नहीं। मैं समझता हूँ कि सृष्टि-संहार का कार्य्य आपके सुपुर्द होने के कारण, आपमें गर्व बहुत बढ़ गया है; इसीलिये सृष्टि-कर्त्ता के राज्याभिषेक पर सम्मिलत होने में जान-बूझकर आपने विलम्ब किया है।

नारद—(स्वगत) नये प्रजापति की बुद्धि का दूसरा पर्दा खुला।

शङ्कर—दक्ष, मैंने क्षमा माँगी–तो तुम और ऊपर चढ़ गये ? मैंने नम्रता दिखाई–तो तुम धृष्टता में और आगे बढ़ गए ? सृष्टि-संहार का देवता मैं अवश्य हूँ, पर उसका गर्व न मुझ में पहले था, न अब है। किन्तु-देखता हूँ कि सृष्टिकर्त्ता की पदवी पाते ही–तुम में गर्व उत्पन्न हो गया है।

दक्ष—शङ्कर, मुँह सँभालो !

शङ्कर—दक्षराज, आँखें न निकालो।

दक्ष—अन्यथा ?

शङ्कर—पछताओगे, अपनी भूल पर एक दिन अपने आप ही आँसू बहाओगे :—

बड़ी पदवी जो पाई है, तो सीखो कुछ बड़प्पन को।
न देखो एक ही लोचन से ईंधन और चन्दन को॥

बड़ा बनना सुलभ है; पर कठिन उसका निभाना है।
चलाना सृष्टि-शासन एक काले का खिलाना है॥

दक्ष—बस, मैं दूसरी बार आज्ञा देता हूँ कि मौन होजाओ।

शङ्कर—और मैं दूसरी बार चेतावनी देता हूँ कि इतने गर्व में न आओ, (त्रिशूल उठाना चाहते हैं फिर कुछ सोचकर और त्रिशूल न उठा कर, स्वगत) महाशक्ति, अर्द्धाङ्गिनि, इसका बदला तुम लोगी।

ब्रह्मा—शान्त, कैलासपते शान्त।

शङ्कर—ब्रह्मदेव, मुझे चिन्ता है कि दक्ष सृष्टि का कार्य्य किस प्रकार चलायेंगे?

ब्रह्मा—चलायेंगे, चलायेंगे, अपनी चतुराई से नहीं, तो आपके आशीर्वाद से चलायेंगे। मेरे अनुरोध से शङ्करजी, इसका आज का यह अपराध क्षमा कर दीजिये।

शङ्कर—आप यह क्या कह रहे हैं ब्रह्मदेव? क्या आपने यह समझ लिया कि इस अनादर के प्रतिशोध में मैंने त्रिशूल को कोई आज्ञा दी? कदापि नहीं।

ब्रह्मा—तो फिर इनकी मूर्खता क्षमा कर दीजिए।

शङ्कर—हाँ, हाँ, क्षमा। अपनी ओर से तो मैं-आपके सामने, इस सम्पूर्ण देव-मण्डल के आगे, दक्षराज का, आज का अपराध; क्षमा करता हूँ।

—०—

स्थान—कनखल का राजमार्ग

नारद—(प्रवेश करके) हँसो-हँसो, सृष्टि के सम्पूर्ण जीवो, हँसो। ऋषियो, देवताओ और मनुष्यो हँसो। पर्वतो, नदो और वृक्षो, हँसो। सूर्य्य, चन्द्र और सितारो, हँसो। ग़रीब जब तक ग़रीब रहता है, तब तक सब के साथ सज्जनता का बर्त्ताव करता है, परन्तु वही जब लाखों, करोड़ों की दौलत का अधिकारी हो जाता है, तो सीधी बात भी नहीं करता। क्या यह हँसने की बात नहीं है ?

भूखा आदमी भोजन के लालच से दर दर भटक कर, दो-चार रोटियाँ मिल जाने पर, सन्तोष-पूर्वक कंकड़ों-पत्थरों पर-सुख की नींद सो रहता है, परन्तु-वही जब प्रारब्ध के अनुसार किसी बड़े ख़ज़ाने का स्वामी और किसी बड़े महल का मालिक बन जाता है-तो छत्तीस प्रकार के भोजनों को स्वाद-रहित और रुई से भरे हुए मख़मली गद्दे के भीतर एक बिनौला रह जाने और उसके यकायक चुभ जाने के कष्ट को-भारी कष्ट समझने लगता है। क्या यह हँसने की बात नहीं है ?

किसी भयानक रोग की पीड़ा से सताया हुआ रोगी, शैया पर कराहता हुआ–ईश्वर, परमात्मा, नारायण और भगवान् की पुकारों से सारे मकान को हिला देता है; परन्तु वही–जब उस रोग से अच्छा हो जाता है तो फिर सुबह-शाम, दिन–रात किसी एक वक़्त भी–किसी एक क्षण के लिए भी– उस परम प्रभु का ध्यान नहीं करता। क्या यह हँसने की बात नहीं है ?

अभी, उसी दिन दक्षराज ने पद अधिकार जभी पाये।
सब से पहले बाण गर्व के शङ्कर ही पर बरसाये।
किन्तु धन्य है शङ्कर को, जो किया वहाँ प्रतिघात नहीं।
इस पर भी हैं गर्म दक्ष, क्या यह हँसने की बात नहीं ?

(सामने देखकर) यह लो, अपनी टेढ़ी भृकुटी, लाल आँखें और गम्भीर मुद्रा के साथ महाराज दक्षराज, इधर ही आरहे हैं। साथ में धनपति और कविराय भी शोभा पा रहे हैं। जिस प्रकार हलवाई की दूकान को मक्खियाँ हर वक़्त घेरे रहती हैं, उसी तरह इन नये प्रजापति के साथ, सब समय यह मन्त्री-मण्डल लिपटा रहता है। क्या यह हँसने की बात नहीं है ?

(दक्ष का धनपति और कविराय के साथ आना।)

दक्ष—इतना बड़ा अपमान ! और भरी सभा में !

धनपति—और फिर वह भी किसका ? प्रजापति का ?

कविराय—सृष्टिकर्त्ता का ?

दक्ष—

धतूरे ने बना रक्खा है पागल उस मसानी को ।
कि जलती आग में वह डालता है हाथ पानी को ॥

धनपति—और फिर शान तो देखिए कि–आपको (दक्ष की ओर संकेत करके) क्षमा करते हैं ।

कविराय—ख़ुद क्षमा माँगने के बजाय हमारे प्रजापति को क्षमा करते हैं । इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई—

आप करे अपराध, फिर, आप दिखावे ज़ोर ।
कोतवाल के वास्ते, उल्टा डाटे चोर ॥

दक्ष—एक ? नहीं, दो–दो अपराध उसने किये हैं । राज्याभिषेक के उत्सव पर आने में विलम्ब लगाया; और जब जवाब माँगा, तो हमीं को नीचा दिखाया !

कविराय—और अब तीसरा अपराध उसकी तरफ़ से और होनेवाला है, कुछ उसका भी ख़याल है ?

दक्ष—वह क्या ?

धनपति—हम सृष्टि–कर्त्ता हैं और वह सृष्टि संहारक । हम नई–नई सृष्टि बनायेंगे, और वह उसे संहारता जायेगा ।

कविराय—इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई—

हानि–लाभ की बात का, चतुर समझता भेद ।
पानी कैसे भरे जब, बर्तन में हो छेद ॥

दक्ष—क्या अधिकार है शङ्कर को कि वह हमारी मेहनत धूल में मिलाये ? कौन होता है शङ्कर जो हमारी पकी–पकाई

खेती को उजाड़ने के लिए आए ? ज़ुरूरत नहीं है, हमारे राज्य में सृष्टि-संहार करनेवाले औघड़ की ज़ुरूरत नहीं है।

मैं ताज वाला, वह राख वाला; मैं मालधारी, वह मुण्डधारी।
मैं एक दानी, वह एक मसानी; मैं एक राजा, वह एक भिखारी॥
मैं सृष्टिकर्त्ता, वह सृष्टिहर्त्ता, मैं प्राणदाता, वह प्राणहारी।
निभेगी कैसे ? बनेगी क्योंकर ? इधर क़लम है, उधर कटारी॥

नारद—(स्वगत) भई वाह ! सृष्टिकर्त्ता तो सृष्टि बनाते रहें-परन्तु सृष्टि-संहार करनेवाले सृष्टि का संहार न करें। क्या यह हँसने की बात नहीं है ? (प्रकट) सृष्टिपते आज एक नई ख़बर आपको सुनानी है।

दक्ष—कौन ? नारद ? कहो, क्या कहना चाहते हो ?

नारद—मैंने सुना है कि भगवान् शङ्कर अत्यन्त शीघ्र प्रलय कर देना चाहते हैं।

दक्ष—क्यों ?

नारद—इसलिए कि उनकी राय में यह वर्त्तमान सृष्टि-बहुत बुरी सृष्टि है—

स्वार्थ है हरएक दिल में, प्रेम का उपहास है।
देखिये जिसको वही बस वासना का दास है॥
योग के पर्दे में प्राणी कर रहे बहु भोग हैं।
काम तिल भर हो तो पर्वत सा बताते लोग हैं॥

दक्ष—यह है वह ज़हर—जिसे मरघटों में विचरनेवाला हर वक्त उगला करता है। आज सृष्टि स्वार्थ की होगई ?

अभिमान की होगई ? और कल तक ? पिताजी जबतक प्रजापति थे-तब तक ? शान्ति की थी ?

मालूम हुआ उसका सब ज्ञान खोगया है ।
भूतों के साथ रहकर ख़ुद भूत होगया है ॥

नारद—(स्वगत) भड़की ! भड़कने दो, संसार का भला होगा ।

दक्ष—मैं चाहता हूँ कि सृष्टि-रचना के क्रम में शीघ्रातिशीघ्र नए नए आविष्कार हों । वृक्ष पशु, पक्षी और मनुष्य आदि समस्त जीव-किसी नवीन रीति से उत्पन्न किए जायें और सुन्दर से सुन्दर उत्पन्न किए जायें । इसी कारण मैंने पहले मानसी सृष्टि बनाई, परन्तु उसमें सतोगुण विशेष था, सतोगुण प्रधान सृष्टि से भी संसार का कार्य्य नहीं चल सकता, तब यज्ञ द्वारा रजोगुणी सृष्टि निर्म्माण की, पर उससे भी इस परिणाम पर पहुंचा कि केवल रजोगुण से भी रचना कार्य्य में पूर्ण सफलता नहीं होगी । लाचार होकर वर्तमान तमोगुणी सृष्टि बनानी पड़ी । अब अगर इस बढ़ती हुई सृष्टि में-प्राणियों के भीतर अपने स्वत्व की रक्षा के लिए अहङ्कार है-तो क्या बुराई है ? अपने शत्रुओं को दमन करने के लिए क्रोध है-तो क्या पाप है ? अपने धन की वृद्धि के लिए लोभ है-तो क्या हानि है ? अपनी सन्तति बढ़ाने के लिए काम-चेष्टा है-तो क्या अनुचित है ? अपनी सन्तान के लालन पालन के लिए मोह है-तो क्या दोष है ? मुझे

गर्व है कि मैं प्रजापति के कर्त्तव्य में प्रतिक्षण सफलता प्राप्त करता जारहा हूँ :-

बुरी रोगी को पुर्वाई हो, पर-है वृष्टि का भूषण ।
जिन्हें कहते हो तुम दूषण, वही हैं सृष्टि का भूषण ॥

नारद—महाराज, यह आप सृष्टिकर्त्ता के कार्य्य का वर्णन नहीं कर रहे हैं संहारशक्ति ही का समर्थन कर रहे हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार ही तो वह अकाट्य शस्त्र हैं जो अन्त में-किसी न किसी समय-प्राणियों के संहार का कारण बन जाते हैं :—

कहीं काम के विषम वाण से जाते हैं प्राणी के प्रान ।
कहीं क्रोध की वेदी पर होता है जीवों का बलिदान ।
कहीं लोभ की फाँसी में होती है जीवन-हानि महान ।
कहीं मोह की महा निशा में होते देखा है अवसान ।
अहङ्कार तो है ही-जग को साक्षात् यमराज समान ।

धनपति—तो सृष्टिकर्त्ता प्रजापति यही तो चाहते हैं कि यह काम क्रोध आदि-सृष्टि रचना में सहायक बने रहें—इतनी मात्रा में बढ़ न जायें कि सृष्टि का संहार हो जाय ।

कविराय—अहा पृथ्वी पर नए नए पौदे, और उन पौदों में अति सुन्दर सुन्दर रंगों के फूल-प्रति पल हमारे प्रभु बनाते हैं, फिर जो वह किसी शक्ति द्वारा तोड़े जाते हैं तो निःसन्देह बनाने वाले के हृदय को दुःख पहुँचाते हैं । इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई :

घर के डाकू से भला कैसे माल बचायँ ?
बुढ़िया पो पो कर मरे, मुस्टन्डे खा जायँ ॥

नारद—प्रजापते, सृष्टि की रचना आज ही से नहीं; अनादि काल से है–और इसकी यह गति एक नियम के आधीन है, एक विधान के अनुसार है। सृष्टि, स्थिति और प्रलय उस विधानकर्त्ता की तीन शक्तियां हैं–तीन प्रकार के अधिकार हैं। यह नहीं हो सकता कि एक अधिकार जगत में वर्तमान रहे; या एक अधिकार का अधिकारी दूसरे अधिकार या उसके अधिकारी का विरोध करे। यदि आपकी ऐसी धारणा है तो निःसन्देह वह अनधिकार चेष्टा है और कार्य में परिणित न होने वाली एक कपोल कल्पना है।

दक्ष—होने दो, मैं सब देख लूँगा, आज इस आकाश के नीचे, इस पृथ्वी के ऊपर, यह सृष्टिकर्त्ता प्रजापति दक्ष हुक्म देता है–कि मेरी हुकूमत के ज़माने में सृष्टि का नाश करनेवाले शङ्कर की ज़ुरूरत ही नहीं है—

मिटा देना है हर का पद, जगत् का ताप हरने को।
ज़ुरूरत है न उसकी, सृष्टि का संहार करने को॥

नारद—तो क्या सूर्य्य को उदय करके, फिर पश्चिम में अस्त नहीं होने दिया जायगा?

दक्ष—नहीं।

नारद—पूर्णमासी के बाद चन्द्रमा की एक एक कला घटाई नहीं जायगी?

दक्ष—नहीं।

नारद—खेत में पैदा होनेवाले नाज को पकजाने के बाद काटा नहीं जायगा?

दक्ष—नहीं।

नारद—पेड़ पर फल आने के बाद फल को उस जगह से तोड़कर खाया नहीं जायगा?

दक्ष—नहीं।

नारद—हा हा हा हा हा हा! क्या यह हँसने की बात नहीं है?

दक्ष—हँसते हो नारद?

नारद—हँसू नहीं, तो क्या रोऊँ? आप जब सृष्टि को ऐसे आनन्द की सृष्टि बनाना चाहते हैं तो आनन्द के समय सभी को हँसी आती है।

दक्ष—नहीं.तुम्हारी इस समय की यह हँसी व्यङ्ग की हँसी मालूम होती है।

नारद—ख़ूब समझे! भला प्रजापति की भी कोई हँसी उड़ा सकता है? आप तो इतने वहमी कभी न थे, पर मालूम होता है कि इन दोनों रसगुल्लों ने आपकी ज़ुबान बिगाड़ दी है।

कविराय—हम रसगुल्ले? क्यों नारद?

नारद—अरेरेरे मैं भूला; रसगुल्ले नहीं, विषगुल्ले।

धनपति—हैं! विषगुल्ले?

नारद—वह भी नहीं, यह भी नहीं, तो बागड़ बिल्ले।

तार सितारों के टूटें तो दोषी तन्त्री होते हैं ।
राज अगर बिगड़े तो उसके कारण मन्त्री होते हैं ॥

दक्ष—सावधान नारद ! मैं तुझे इस व्यङ्ग का दण्ड दूंगा।

नारद—दण्ड दूँगा ? क्या मारोगे ?

दक्ष—अवश्य । (दक्ष गला दबाता है)

नारद—ठहरो, भाई, ज़रा ठहरो । तुम्हारी हार होगई । संहार-शक्ति जब तुम्हारे शरीर में आगई तभी तो तुमने मेरा गला दबाया । क्या यह हँसने की बात नहीं है ?

दक्ष—(गला छोड़कर) तुम्हारी भी हँसी किसी वक्त बन्द नहीं होती ।

नारद—हँसी की बात नहीं है भाई, मैं तुम्हें सचेत किए देता हूँ कि संहार-शक्ति से मत उलझना। उलझोगे तो खुद ही उलझन में पड़ जाओगे ।

दक्ष—ओह, मुझे इसकी पर्वा नहीं है ।

कराना है मुझे अब हर जगह अपमान उस हर का ।
जो बैतालों का स्वामी है, न घर का है न बाहर का ॥

धनपति—प्रजापति ठीक कहते हैं ।

कविराज—सृष्टिपति सत्य कहते हैं ।

(तीनों का प्रस्थान)

नारद—क्या खाक ठीक और सत्य कहते हैं। अपने हाथों अपना विनाश करते हैं। ऊपर को चढ़कर फिर नीचे को गिरते हैं। मुझे तो मालूम होता है कि दक्ष को सौंपा हुआ काम फिर एक न एक दिन पिता जी को ही सँभालना पड़ेगा।—

धिक्कार है ऐसी दौलत पर जो दुर्जन करदे सज्जन को।
लानत है ऐसी चांदी पर, जो मिट्टी करदे जीवन को॥

गाना (४)

बुरा होता है गर्व पिशाच।
मतिवाले को मतवाला कर खूब नचाता नाच॥
सांप किसी को काटे तो वह मरकर पाता चैन।
किन्तु गर्व का काटा—व्याकुल रहता है दिन रैन॥
गर्व का है अचूक नाराच॥ १॥
मद्यप मद्यपान कर जैसे करता है उत्पात।
गर्वीला भी करता है त्यों उल्टी उल्टी वात॥
भैरवी को कहता खम्माच॥ २॥
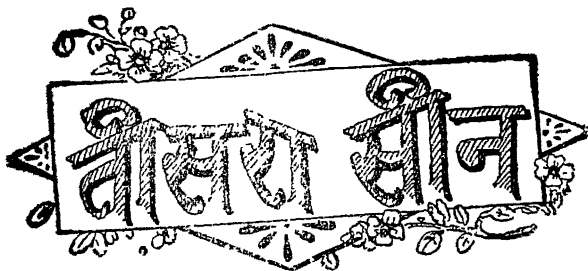
स्थान—दक्ष के राज महल का बाहरी भाग

(कीर्त्तन करने वालों का शिव-कीर्त्तन करते हुए आना ।
अटारी पर चढ़कर सती का सुनना)

गाना (५)

कीर्त्तनकार—

रटोरे मन शिव-शिव की रट प्यारी ।
गङ्गाधर करुणाकारी, मृत्युञ्जय मङ्गलकारी ।
रुज-हारी, दुख-हारी भयहारी ।
जय के दाता, जगधारी, जन के सच्चे हितकारी ।
असुरारी, अविकारी ।
पूरण काम, 'राधेश्याम' बाबा भोले भण्डारी ।

—०—

सती—(नीचे आकर) भक्त जनों, तुम कौन हो ?

१ कीर्त्तनकार—पधारिए, पधारिए, दक्षपुत्री राजकुमारी सती, पधारिए। देवी, हम कीर्त्तन करने वाले हैं। इस सेवक को लोग दिगम्बरनाथ कहते हैं।

सती—दिगम्बरनाथ ? अच्छा ! दिगम्बरनाथ जी, अभी अभी आप किस का कीर्त्तन कर रहे थे ?

दिगम्बर०—उनका-जो विश्वनाथ हैं, सब देवताओं में महादेव के नाम से विख्यात हैं।

सती—धन्य ! उस सिंहासन के भीतर, जो एक शान्त और सुन्दर मूर्ति रक्खी है—वह क्या उन्हीं विश्वनाथ भगवान की है ?

दिगम्बर०—हाँ, राजकुमारी।

सती—क्या मैं उस सिंहासन के पास जाकर, उस मूर्ति का दर्शन कर सकती हूँ ?

दिगम्बर०—जी हाँ-अवश्य।

सती—(सिंहासन पर रक्खी हुई शिव-मूर्ति देखकर, स्वगत) अहा ! कैसा मनोहर और दिव्य रूप है ! कैसी पावन और शोभा-पूर्ण मूर्ति है ! मन मुग्ध हुआ जाता है, किसी चुम्बक जैसी आकर्षण शक्ति से आकर्षित होकर, लोहा रूपी यह प्राण खिंचा जाता है। (प्रकट में) विश्वनाथ के पुजारियो, क्या आधी या चौथाई घड़ी का समय मुझे इस काम के लिए दोगे कि मैं जीभर कर इस मनोहर मूर्ति का दर्शन कर लूँ ?

दिगम्बर०—अवश्य, अवश्य।

सती—अच्छा, तो मेरे नेत्र इस सुन्दरता के समुद्र में तैरने के वास्ते उतरते हैं; और मेरे कान तब तक और एक प्रेम-भरी स्तुति सुनने की तुम से अभिलाषा रखते हैं।

दिगम्बर०—राजकुमारी की जैसी आज्ञा।

(सती मूर्ति को देखती है, कीर्त्तनकार स्तुति गाते हैं)

गाना (६)

कीर्त्तनकार—

ऐसी कृपा हो शङ्कर, जब प्राण तन से निकले।
शिव-शिव ही हो ज़ुबाँ पर, जब प्राण तन से निकले॥

सती—(मूर्ति को देखती हुई, स्वगत) अहा, शीश पर लटकते हुए जटाओं के झुण्ड कैसी शोभा दे रहे हैं!—मानो काली काली घटाओं के टुकड़े पृथ्वी की तरफ़ झुक रहे हैं।

कीर्त्तनकार—

श्री गङ्गा जी का तट हो, और बेल का विटप हो।
सम्मुख हों श्रीमहेश्वर जब प्राण तन से निकले॥

सती—(पहले की तरह, स्वगत) माथे का यह आधा चन्द्रमा—ऐसा मालूम होता है कि इन श्वेताङ्ग महाप्रभु से बराबरी करने आया था; परन्तु इस दिव्य छटा के सामने ख़ुद ही लज्जित होकर आधा रह गया और हमेशा के लिये इस रूप के आकाश में क़ैद भी हो गया।

कीर्त्तनकार—

अँजुली में गङ्गाजल हो, और मुख में तुलसीदल हो ।

हर श्वास में हो हर हर जब प्राण तन से निकले ॥

सती—(पहले की भांति, स्वगत) यह मुण्डों की माला और यह मणिधर सर्पों के भूषण—इस भस्मी रमे हुए शरीर पर ऐसे सुहा रहे हैं, मानो नीले आकाश पर सप्त ऋषियों के साथ साथ सम्पूर्ण नक्षत्र शोभा पा रहे हैं।

कीर्त्तनकार—

दामन को जब पकड़ लूँ, तब तीन हिचकियां लूं ।

गिरजाय गोदमें सर, जब प्राण तन से निकले ।

सती—(उसी प्रकार, स्वगत)—

आँखों में ब्रह्माण्ड का, खिंचा हुआ है सार ।

सत, रज, तम—तीनों जहाँ, बैठे बन साकार ॥

श्वेत रङ्ग पै इस तरह, सोहैं पुतली श्याम ।

मानों क्षीर—समुद्र में, पौढ़े शालग्राम ॥

(प्रकट) महादेव के उपासको, एक प्रश्न का उत्तर दोगे ?

दिगम्बर०—क्यों न देंगे ?

सती—यदि कोई वस्तु किसी को बहुत प्यारी मालूम हो—तो वह क्या चाहेगा ?

दिगम्बर०—वह यह चाहेगा कि-वह वस्तु उसी के पास रहे।

सती—तो बस, यह मूर्ति मुझे इतनी प्यारी मालूम होती है कि मैं इसको अपने पास ही रखना चाहती हूँ ।

दिगम्बर०—परन्तु जो मूर्ति आपको इतनी प्यारी मालूम होती है-वह दूसरे को भी तो उतनी ही प्यारी मालूम होती है ?

सती—तो मैं इस मूर्ति के बदले में-हज़ारों और लाखों रत्न तुम्हें दे सकती हूँ।

दिगम्बर०—देवता रत्न लेकर बेचे नहीं जाते।

सती—तो मैं तुम्हारी तरह इस मूर्ति की पुजारिन बन कर, तुम्हारी मण्डली की एक छोटी सी चेली कहलाकर-तुम सब के साथ रह कर, इस मूर्ति की पूजा किया करूँगी। तुम मूर्ति मुझे नहीं देते-तो मैं इस मूर्ति के साथ रहा करूँगी।

दिगम्बर०—यह भी असम्भव है, भिखारियों के साथ राजकुमारी का रहना अनुचित है।

सती—द्रव्य भी नहीं लेते, मुझे भी साथ नहीं रखते, तो मैं तुम सब के आगे गिड़गिड़ाकर, अपना अञ्चल फैलाकर, इस मूर्ति की तुमसे भिक्षा माँगती हूँ।

दिगम्बर०—भिक्षा में कोई इष्टदेव को नहीं देता है।

सती—कीर्त्तन करनेवाले !

दिगम्बर०—राजकुमारी !

सती—तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ ?

दिगम्बर०—संसार के सब से बड़े राजा दक्ष की पुत्री।

सती—तो बस, संसार के सब से बड़े राजा दक्ष की पुत्री-तुम्हें इस अपराध पर-कि तुम उसके महलों के नीचे गाते हुए आए-तुम्हारी यह मूर्ति छीन कर, तुम्हें यहाँ से चले जाने की आज्ञा देती है।

दिगम्बर०--हा हा हा हा, हम समझ गये कि आप की यह आज्ञा क्रोध का उन्माद नहीं, प्रेम का प्रसाद है। अच्छा, हम आपको यह मूर्ति देदेंगे, लेकिन एक प्रतिज्ञा करनी होगी !

सती--वह क्या ?

दिगम्बर--इस मूर्ति का अपमान न हो।

सती--ऐसा भी कहीं हो सकता है ?

लगने देता नैन को पलक न जैसे चोट।
त्यों ही रक्खूंगी इन्हें, मैं प्राणों की ओट॥

दिगम्बर--तो बस, आज से यह मूर्ति तुम्हारी हो गई। परन्तु जाने के पहले एक मर्त्तबा इतनी आज्ञा दे दीजिए कि हम अपनी इस मूर्ति को अन्तिम बार हृदय से लगालें।

सती--हाँ, अवश्य।

दिगम्बर--(मूर्ति को हृदय से लगाकर)

ग़रीबों के सहारे, अब तलक तुम थे ग़रीबों में।
विराजो अब से राजा की सुता के स्वच्छ महलों में॥
अभी तक हमने रक्खा आपको बाहर की चीज़ों में।
मगर देते जगह हैं अब से अपने शुद्ध हृदयों में॥
सती को आपका पूजन मनोवाञ्छित का दाता हो।
हमारा हर रुआँ बस आपही का राग गाता हो !

("रटो रे मन शिव शिव की रट प्यारी" गाते हुए जाना)

सती—(सिंहासन सहित मूर्ति को ऊंची जगह रखकर) विश्वनाथ,

अभी तक उनके थे, अब आप मेरे साथ हो जाओ।
मेरा मस्तक बनो, आँखें बनो, और हाथ हो जाओ॥
बने हो नाथ अब तक विश्व के, भूतों के, भक्तों के।
अब ऐसा नाथ दो नाता, सती के नाथ हो जाओ॥

(शिर नवाना)

दक्ष—(प्रवेश करके) हैं ! यह मैं क्या देख रहा हूं ? सती, तू किसको मस्तक झुका रही है ?

सती—कौन पिताजी ? मैं विश्वनाथ को सिर नवा रही हूँ।

दक्ष—(आगे बढ़कर और शिव की मूर्ति को देखकर) हैं ! यह तो मेरा बैरी है ! फेंकदे, फेंकदे, बावली लड़की, इस मूर्ति को सिंहासन समेत फेंकदे।

सती—पिताजी, मैं तो इस मूर्ति को हृदय में स्थान दे चुकी हूँ।

दक्ष—हैं ! ढीठ लड़की, तू यह क्या कह रही है ?

सती—ठीक कह रही हूँ पिताजी,—

जो मुनियों के भी आ न सकता मनन में।
मेरे मन-भवन में वह आया हुआ है॥
समाया है जिसमें यह संसार सारा।
मेरी आँख में वह समाया हुआ है॥

दक्ष—अगर तेरी आँखें इतनी निर्लज्ज हो गयी हैं-तो उनके लिये मुझे दण्ड देना पड़ेगा।

सती—आँखें? निर्लज्ज? नहीं हैं, लजीली हैं। परन्तु किसके सामने? उसके जो दुनिया भर की आँखों का तारा है। मेरा ही नहीं, प्राणी मात्र के प्राणों का प्यारा है।—

तुम उनको देखते हो-जो बाहर हैं आँख के।
मैं उनको देखती हूँ—जो भीतर हैं आँख के॥
आँखों ही का बस भेद है और भेद कुछ नहीं।
आँखों ही के पर्दे में वे प्रियवर हैं आँख के॥

दक्ष—सती, कितने दुःख की बात है कि तू मेरे सामने ही उस नीच मसानी की पूजा कर रही है!

सती—नीच, मसानी? नहीं नहीं, वे ऐसे नहीं हैं। वे तो शिव हैं, सदा शिव नीच ऊंच का झगड़ा ही उनके दर्बार में नहीं हैं।—

वहाँ पर जाति का झगड़ा, न पद और मान का झगड़ा।
पिता रखता नहीं छोटी बड़ी सन्तान का झगड़ा॥
यह नीचा और ऊंचा बस जगत् का भर्म सारा है।
जहाँ यह भेद मिट जाता, वहाँ वह शम्भु प्यारा है॥

दक्ष—तूने इस मूर्ति को देखकर ही—उस भंगड़ को इतना बड़ा मान लिया है, या प्रत्यक्ष भी देखा है?

सती—प्रत्यक्ष भी देखा है!

दक्ष—कब? कहां?

सती—अभी, यहाँ! उस कीर्त्तन-मण्डली के स्वामी दिगम्बर-नाथ के हृदय में। उन्हें देखा था!

दक्ष—कौन, दिगम्बरनाथ?

सती—उसके बाद इस मूर्ति में देखा, फिर अपने हृदय में देखा, और अब ? सारे संसार में देख रही हूँ।

वह और हैं जो उनमें संसार देखते हैं।
संसार में उन्हीं को हम सार देखते हैं॥
वह होगये हमारे, हम उनके होगये हैं।
हर जा हम अपने हर को हर बार देखते हैं॥

दक्ष—ओह ! वह दिगम्बरनाथ कौन है ?

सती—मुझे मार्ग दिखाने वाला, मुझे प्रकाश में लाने वाला।

दक्ष—वह यहाँ क्यों आया था ? यहाँ से कहां गया ?

सती—न कोई कहीं से आया, न कोई कहीं गया। मेरा संस्कार एक कीर्त्तनकार के रूप में आया और मेरे स्वामी का मुझे स्मरण करा के अन्तर्द्धान हो गया। (मूर्ति की ओर जाकर) जय जय महादेव—

रूप तुम्हारे सारे हैं, और नाम तुम्हारे सारे हैं।
तार तार में नाथ, तुम्हारे ही तो जय जयकारे हैं॥

दक्ष—यह सचमुच बावली होगई है। कोई है ? (एक सेवक का आना) जाओ, कुछ आदमियों को साथ लेकर जाओ, दिगम्बर नाम वाला एक कीर्त्तनकार अभी इस जगह से किसी तरफ़ गया है, उसका पता लगाकर, धनपति मन्त्री के पास पहुँचाओ, और विना आज्ञा इस स्थान पर आने का उसे दण्ड दिलाओ।

सती—क्षमा, क्षमा, उस बेचारे का कुछ अपराध नहीं है।

दक्ष—क्षमा ? न अब उसके लिये और न तेरे लिये। तू इस मूर्ति को किस भाव से पूजती है ?

सती—किस भाव से ? गुरु के भाव से, सखा के भाव से, और-पति के भाव से।

दक्ष—हैं ! पति ? क्या पति के भाव से भी इसे मान लिया है ?

सती—आज ? अभी ? इस समय ? नहीं, पहले से—पूर्व जन्म से, मानती रही हूं, तभी तो अब भी मान रही हूँ और जन्म जन्मान्तर में भी-मानती रहूँगी।

दक्ष—लड़की, तूने आज कुल की मर्यादा और लज्जा सबका सत्यानाश करके अपने आप अपना पति ढूंढ लिया, क्या यह उचित हुआ ?

सती—पति ढूंढ लिया ? नहीं, देवता ढूंढ लिया। पति ढूंढने का काम मेरा नहीं, आप का है। परन्तु देवता ढूंढने का काम आप का नहीं, मेरा है। संसार में आकर हर एक प्राणी को अपने भगवान् के ढूंढने की इच्छा रहती है, हर एक जीवात्मा परमात्मा की ओर जाने का साधन करती है। वही मैंने भी किया है।

दक्ष—बस, बस, इस बात को तू और बढ़ायेगी, तो मैं अभी तेरी इस मूर्ति का अपमान करूँगा।

सती—इस मूर्ति का अपमान ? कभी नहीं। इस मूर्ति का अपमान तो मैं कभी न होने दूँगी। इस मूर्ति का अपमान न होने देने की तो मैंने सौगंध खाई है--

पहले अपने इस शरीर की खाल मैं खिंचवा दूंगी।
उधर उठाई आंख तो अपनी आँख निकलवा दूंगी॥
तन-मन दूंगी, जीवन दूंगी, सर्वस मैं दे दूंगी।
किन्तु देवता का अपने अपमान न होने दूंगी॥

दक्ष—सती, तू जानती है कि मैं कौन हूँ ?

सती—जानती हूँ, आप मेरे पिता हैं॥

दक्ष—तो पिता की आज्ञा का पालन करना भी तो तेरा धर्म है!

सती—हाँ, आपकी आज्ञा का पालन करना भी मेरा धर्म है।

दक्ष—तो सुन, पिता के नाते से मैं तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू इस समय इस मूर्ति का पूजन मत कर।

सती—जो आज्ञा। (दक्ष का जाना) गये, गये, क्या आज्ञा दे गये ? तू इस समय इस मूर्ति का पूजन मत कर। वह समय कितनी देर तक रहा ? जब तक वे रहे। अब समय और आगे बढ़ गया, (शाम हो जाती है) हैं ? यह क्या ? सायकाल भी हो गया ? बस, तो अब अपने इष्टदेव का पूजन करने में पिता की आज्ञा का विरोध नहीं है। (मूर्ति के पास जाकर) जय, जय, देवों के देव महादेव, आपकी जय ?

संसारसारं, दुरितापहारं, प्रणतोपकारं, भजतामुदारं।
कल्याणकारं, कल्पान्तकारं, करुणावतारं, वरदं, नमामि।

(दक्ष का आना)

दक्ष—हैं ! इतनी जल्दी आज्ञा का विरोध ? मैं तो तुझे यह आज्ञा दे गया था कि इस समय पूजन न कर ?

सती—पिताजी, जिस समय के लिये आप आज्ञा दे गये थे वह समय समाप्त होगया, इसलिये मैंने पूजन प्रारम्भ कर दिया।

दक्ष—फिर इस समय के लिये मैं मना करता हूँ। अगर अब भी न मानेगी, तो अवश्य मेरे क्रोध का शिकार बनेगी।

सती—(हाथ जोड़कर।) पुत्री पर क्रोध ?

दक्ष—जी नहीं चाहता कि करूं, पर मजबूरी कराती है।

सती—तो उस मजबूरी को त्याग दीजिये।।

दक्ष—तू इस मूर्ति की पूजा को त्याग दे।

सती—यह नहीं होगा !

दक्ष—तो वह भी नहीं होगा।

सती—नहीं ?

दक्ष—नहीं, नहीं। (गिराकर चला जाना)

सती—(उठकर) फिर थोड़ी देर के लिये आज्ञा के बन्धन में बाँध गये। वह थोड़ी देर, मैं समझती हूँ कि, अब समाप्त होगई। (रात होजाती है) यह क्या? अब तो रात्रि भी हो गई, चन्द्रमा और तारे भी निकल आये, पूजा का समय हो गया, (मूर्ति के पास जाकर) सूर्य, तेरी आरती कहाँ है? बादल तेरा घड़ियाल कहां है? सागर, तू अपनी तरङ्गों से मेरे गङ्गाधर को अर्घ्य प्रदान कर। बन, तू अपने पुष्पों से मेरे वनखण्डीनाथ का शृङ्गार कर। तारामण्डल, तू अपनी माला गूंथ कर मेरे महाराज के गले में डाल। हिमालय हाथ जोड़ कर सेवा में खड़ा हुआ है; पृथ्वी परिक्रमा करने के लिए उत्साह को प्राप्त हो रही है। ऐसे

समय में, नाथ, यह तुम्हारी दासी तुममें लीन हो जाना चाहती है।

बस आज ही सारा मिटजाये, झगड़ा दासोऽहं सोऽहं का।
शिव में लय होकर अहंभाव, रह जाये गान शिवोऽहं का॥

(दक्ष का फिर प्रवेश)

दक्ष—हैं! फिर आज्ञा का विरोध? बस, बस, हठीली लडकी, अब मैं तुझे क्षमा नहीं करूंगा। (स्वगत)—

बेशर्म हो ज़िद्दन हो तो किस काम की लड़की?
है कालिमा यह मेरे विमल धाम की लड़की॥
समझूंगा इसकी ज़िन्दगी बर्बाद करके मैं।
मेरे हुई नहीं थी सती नाम की लड़की॥

सती—ऐसी ही इच्छा है पिताजी, तो तल्वार म्यान से निकालिए—

सर्वस्व मिटा डालेगी अपमान पै सती।
खेलेगी जान बूझ के अब जान पै सती॥
समझूंगी इसी मूर्ति के चरणों में मिटके मैं।
सानन्द सती होगई भगवान पै सती॥

दक्ष—यही हठ है, तो मेरा हाथ छूटता है, तेरी खोपड़ी के ख़ून का बाँध टूटता है—

ख़ून का दरिया बहाऊंगा मैं तेरे ख़ून से।
ज़र्रे ज़र्रे को न्हिलाऊंगा मैं तेरे ख़ून से॥
अब नहीं नाता है पुत्री और पिता का लेशमात्र।
खड्ग को होली खिलाऊंगा मैं तेरे ख़ून से॥

(तल्वार मारना चाहता है
कि प्रसूति आजाती है)

प्रसूति—(रोककर) दया ! दया !! पुत्री पर नहीं, तो पुत्री को उत्पन्न करने वाली पुत्री की इस माता पै दया !!!

दक्ष—कौन ? रानी ? प्रसूति ? सती की माता ? ऐसी निर्लज्ज सन्तान के लिये तुम दया की भिक्षा माँगने आई हो ?

प्रसूति—भिक्षा नहीं, न्याय माँगने आई हूँ ।

दक्ष—क्या न्याय माँगने आई हो ?

प्रसूति—आप इसको क्यों मार रहे हैं ?

दक्ष—इसलिए कि यह मेरे वैरी शङ्कर का पूजन करती है, शङ्कर को पति-भाव से देखती है ।

प्रसूति—तो इसमें यह दोषी नहीं है ।

दक्ष—तो क्या मैं दोषी हूँ ?

प्रसूति—हाँ ।

दक्ष—क्यों ?

प्रसूति—यों-कि यह युवती होगई और आपने इसके विवाह की फ़िक्र नहीं की । (आंख से आंसू निकल आते हैं)

दक्ष—रानी, तुम्हारा यह तर्क और तुम्हारे ये करुणा के आँसू, इस समय मेरे क्रोध की अग्नि को नहीं बुझा सकेंगे । मैं इसे मारूँगा और अवश्य मारूंगा ।

प्रसूति—अवश्य मारेंगे ?

दक्ष—हाँ, हाँ, अवश्य मारूँगा ।

प्रसूति—परन्तु, मैं कदापि ऐसा नहीं होने दूँगी ।

दक्ष—क्यों ?

प्रसूति—इसका जवाब मेरी आंखों की पुतलियों में है।

दक्ष—उन्हीं आंखों की पुतलियों के आगे इसका ख़ून बहेगा।

प्रसूति—मैं कदापि नहीं बहने दूँगी।

दक्ष—क्यों?

प्रसूति—इसका जवाब मेरी छातियों के दूध में है।

दक्ष—प्रसूति, तुम नहीं मानोगी?

प्रसूति—हां, नहीं मानूँगी।

दक्ष—क्यों?

प्रसूति—क्यों?—

इसका उत्तर कोख वह देगी, जो सन्तान की दाता होगी।
पिता चहे कुपिता होजाये, माता नहीं कुमाता होगी॥

सती—(चित्र की ओर देखकर) विश्वनाथ, झगड़ा बढ़ता ही जारहा है, मुझे अपनी मृत्यु की चिन्ता नहीं; चिन्ता है तो यह, कि कहीं आपका अपमान न होजाय।

कटजाय मेरी गर्दन, पर्वा न इसकी मुझको।
मिट जाय मेरा जीवन चिन्ता न इसकी मुझको॥
पर नाम तेरा जग से, जाये न भक्तवत्सल।
महिमा को तेरी बट्टा आये न भक्तवत्सल॥

प्रसूति—स्वामी?

दक्ष—कहो।

दक्ष—सती किसको पति के भाव से पूज रही है?

दक्ष—शिव को।

प्रसूति—तो शिव को पति के भाव से पूजनेवाली लड़की पतिता नहीं हो सकती।

दक्ष—क्यों?

प्रसूति—यों, कि शिव कोई राक्षस नहीं हैं, पिशाच नहीं हैं-देव हैं। देवों में भी है महादेव हैं।

नहीं कुछ हम से कम पदवी महेश्वर की दिखाती है।
उन्हें अपना बनाने में बुराई कुछ न आती है॥
जो हम हैं देवताओं में, तो वह अधिदेव देवों के।
नदी मिलने को जाती है, तो सागर ही में जाती है॥

दक्ष—रानी, तू भी उसी के रङ्ग में रँग गई? कुए में पड़ी हुई भंग ने सब को मतवाला बना दिया? वह भी नहीं, तू भी नहीं, दोनों समाप्त। यह दक्ष दूसरी सृष्टि बनायेगा। इस तल्वार के घाट आज दो दो को पहुँचाया जायगा। माता और बेटी, दोनों का शव आज इस महल से एक साथ उठाया जायगा-

हर्गिज़ नहीं रहेंगे दुनिया में नाथ दो दो।
रक्खेगा कोई कैसे कंधे पे माथ दो दो॥
लो देखो खड्ग के अब तुम दोनों हाथ दो दो।
लाशें यहाँ गिरेंगी अब साथ साथ दो दो॥

(दक्ष-सती तथा रानी को मारना चाहता है। मूर्ति में से त्रिशूलधारी शिव प्रकट होते हैं। दक्ष आश्चर्य से देखता रहजाता है)

—०—

स्थान—राजमहल का दूसरा बाहरी भाग।

(दो सिपाही दिगम्बरनाथ को गिरफ़्तार करके लाते हैं। दूसरी ओर से धनपति आता है।)

धनपति—(दिगम्बरनाथ से) क्यों मृत्यु के ग्रास, तुझे हमारे महाराज के महलों के नीचे शिव-कीर्त्तन करने का क्या अधिकार था ?

दिगम्बर०—वही अधिकार, जो हवा को हर मकान के अन्दर जाने का है। वही अधिकार, जो बादल को हर जगह पानी बरसाने का है।—

हर जगह भगवान की है, हर मकाँ भगवान् का।
हर जगह हम नाम ले सकते हैं हाँ भगवान् का॥

धनपति—अरे-पर तुझे यह नहीं मालूम कि इस ख़ता की सज़ा क्या है ?

दिगम्बर०—मालूम है कि सर तन से उड़ा दिया जायगा। यह सर और यह तन तुम्हारा या तुम्हारे राजा का है; परन्तु इसके अन्दर जो जीवात्मा है वह भगवान् विश्वनाथ का है।

शीश तो यह कट के राजा के चरण में जायगा।
किन्तु जीवात्मा सदाशिव की शरण में जायगा ॥

धनपति—शिव ? शिव ? कैसा शिव ? कहाँ का शिव ?

दिगम्बर०—यहां का शिव, वहां का शिव, दोनों जहाँ का शिव, सदाशिव, सच्चा शिव। दक्ष राजा के खुशामदी मन्त्री, याद रख-

अभ्र हो फिर भी प्रभाकर की प्रभा आयेगी।
खड्ग के साये में भी शिव की सदा आयेगी ॥

धनपति—तो तूने उस शिव को इतना बड़ा-सर्व्वव्यापक-मान लिया है ?

दिगम्बर—मैंने क्या, संसार के प्राणी-मात्र ने उस परम प्रभु का परम प्रकाश अब पहचान लिया है :-

गगन में वायु जैसे, वायु में है अग्नि जैसे,
अग्नि में है नीर जैसे, भूमि जैसे नीर में।
भूमि मे है बीज जैसे, बींज में है वृक्ष जैसे,
वृक्ष में है क्षीर जैसे, प्राण जैसे क्षीर में ॥
प्राण में है गति जैसे, गति में है सृष्टि जैसे,
सृष्टि में है पीर जैसे, शान्ति जैसे पीर में।
ऐसे ही वो शान्तिरूप देव महादेव मेरा,
व्याप रहा यहाँ प्राणी-प्राणी के शरीर में ॥

धनपति—अच्छा, तो तेरा काल तुझे बुला रहा है-तैयार होजा।

दिगम्बर—तैयार हूँ, तैयार हूं, काल से क्या डरा रहा है बन्दे ?–

एक दिन विश्व में सबको ही वह खाजायेगा।
आज जो मुझ पै है तुझ पै भी वह कल आयेगा॥
मुझको कलपायेगा तो तू भी न कल पायेगा।
ज़ुल्म का फल जो नहीं आज तो कल पायेगा॥

धनपति—मरने के समय भी इतना धीरज ?

दिगम्बर—अरे जिनका शान्त जीवन होता है, वह सब समय धीरज धारण किये रहते हैं, मौत की अशान्ति से तो तुझ जैसे अशान्त जीव डरा करते हैं–

जिस पुजारी का सदा देवता मृत्युञ्जय है।
मृत्यु के नाम से कब भय है वह करनेवाला ?
दूसरे चोले में आत्मा यह चला जायेगा।
काल के ख़ौफ़ से ज्ञानी नहीं डरनेवाला॥

धनपति—बड़ा ढीठ है ! बड़ा निडर है !!

दिगम्बर—हाँ, बड़ा ढीठ हूँ-बड़ा निडर हूँ। पर किसके भरोसे ? सदाशिव के भरोसे–

मैं तो मरता हूं मगर इतना कहे जाता हूँ।
ख़ून के अक्षरों मे पद यह लिखे जाता हूँ॥
बेगुनाहों को सताना, है बहुत काम बुरा।
याद रखना कि है इस पाप का परिणाम बुरा॥

धनपति—अब नहीं सहा जाता।

दिगम्बर—तो ले, वार कर, छाती खुली हुई है-

देवता के जो भरोसे पै रहा करते हैं।
सर हथेली पै लिए वेही फिरा करते हैं॥
सीखले, सीखले, मरना भी ओ धन के बन्दे।
भक्त भगवान् पै इस भाँति मरा करते हैं!!

(छाती खोल के आगे करना)

धनपति—अच्छा तो ले-(छुरी मारता है)

दिगम्बर—ॐ शिव! शिव! शिव! सदाशिव!

(धनपति की छुरी से दिगम्बर की मृत्यु)

धनपति—(सिपाहियों से) जाओ, श्मशान में इस लाश को लेजाओ।

(शेखर का आना)

शेखर—ठहर जाओ!

धनपति—छोकरे, तू कौन है? क्यों आया है?

शेखर—क्यों आया हूँ, यह थोड़ी देर में बताऊँगा। कौन हूँ?-यह बताये देता हूँ। मैं इस मरनेवाले का बेटा हूँ, इस परम भक्त के क़ायम किये हुए भक्त-मण्डल का छोटा सा सेवक हूँ। इसके लगाये हुए बिरवे को हरा रखनेवाला माली, इसके उठाये हुए झण्डे को गिरने न देनेवाला एक सहारा, देखने में छोटा सा बच्चा, पर धर्म के नाम पर प्राण की बाज़ी लगा देनेवाला एक महान् योद्धा हूं।

धनपति—अरे! पर तू यहाँ आ कैसे गया?

शेखर—आ कैसे गया ? तेरे यह गीदड़ सिपाही मेरे बाप को तो पकड़कर यहां ले आये; पर मुझे मेरे साथियों सहित आमके पेड़ों से बाँध आये। भला हो एक गौएँ चरानेवाले का, जो उसने हम सब का बन्धन भी खोल डाला और इस रास्ते पर भी डाला।

धनपति—अच्छा, तो फिर तू क्या चाहता है ?

शेखर—मैं ? अपने बाप का बदला। उस लाश के बदले में एक और दूसरी लाश !

धनपति—ओह ! इतना मुँहजोर ?

शेखर—मुँहजोरी तो तुम जैसे दौलत के कुत्तों में होती है। हम तो शेर के बच्चे हैं, शहज़ोरी जानते हैं।

धनपति—देख अपने उस शेर का हाल !

शेखर—वह बूढ़ा शेर था, फिर भी शान के साथ मरा। और यह बच्चा शेर है जो लपकर तेरी बोटी बोटी चबा जायगा। (धनपति का गला पकड़कर) बोल, बोल, मेरे बाप के घातक, हड्डी-हड्डी चूर कर डालूं ? खबरदार जो बलकी ली ! ख़ून ही पी लूंगा ?

(पछाड़ देता है)

इस तरह लेता है बदला दममें बेटा बाप का।
दुष्ट, छाती पै तेरी लिखता हूं फल मैं पापका॥

धनपति—सिपाहियो क्या देख रहे हो ?

शेखर—यह ईश्वरीय शक्ति है। सिपाही इसे नहीं दबा सकते।

(धनपति को मार डालना)

धनपति—(मरते मरते) अरे कोई इसे पकड़ो ।

(सिपाहियों का शेखर को पकड़ने के लिये आगे बढ़ना, अचानक कीर्त्तन-मंडली के और कीर्त्तनकारों का आजाना)

कीर्त्तनकार दल—खबरदार ।

(सिपाहियों के आश्चर्यान्वित होने का टेब्ला)

स्थान राजमहल

(दक्ष का नारद के साथ प्रवेश)

दक्ष--तो तुह्यारी भी यही सम्मति है ?

नारद—हां, यही उचित रीति है कि स्वयम्वर रचाया जाय । उस स्वयम्वर में सती अपने वर को स्वयम् वर कर वरमाला पहनाए ।

दक्ष—परन्तु–शंकर को इस स्वयम्वर में नहीं बुलाया जायगा ।

नारद—शंकर को नहीं बुलाया जायगा ? कारण ?

दक्ष—कारण बताने के लिए प्रजापति वाध्य नहीं है-यह सृष्टि-कर्त्ता का अन्तिम निर्णय है। मैं स्वयम्वर-मंडप की रचना कराता हूँ, तुम समस्त देवताओं, दिक्पालों, और महिपालों के पास निमंत्रण भिजवाने का प्रबन्ध करो।

(दक्ष का जाना)

नारद—(स्वगत) समस्त देवताओं, दिक्पालों, और महिपालों के पास निमंत्रण भिजवाया जाय, परन्तु देवाधिपति महादेव को न बुलाया जाय, क्या यह हंसने की बात नहीं है ? नए प्रजापति, तुम्हारा यह तात्कालिक आविष्कार संसार की हँसी और बढ़ा देगा—

प्रभुता का मद उतना अच्छा जिसमें विवेक और ज्ञान रहे।
पर्वत से टक्कर खाते हो मस्तक का भी कुछ ध्यान रहे॥

(सती का प्रवेश)

सती—पूज्य।

नारद—कौन ? सती ? अचानक इस ओर आने का कारण ?

सती—सुनती हूँ कि पिताजी मेरे स्वयम्वर में देवाधिदेव महादेव जी को नहीं बुला रहे हैं। क्या आप ने भी इस निर्णय को सहन कर लिया है ?-(उत्तर न मिलने पर) समझी, आप पुरुष हैं, धीर और गम्भीर हैं-राजहठ के सम्मुख अपने हृदय के भावों को दबा रहे हैं। परन्तु विद्वद्वर्य, जनता आपकी इस सहन-शीलता को दुर्बलता ही समझेगी, वह कहेगी—

कितना ही ऊँचा तरुवर हो, तरुवर तरुवर कहलाता है।
आंधी का झोंका आने पर, नीचा शिर कर झुक जाता है।

नारद—नहीं सती, यह बात नहीं है।

सती—यह बात नहीं तो क्या बात है? बात की बात है, आपको इस बात पर अड़ जाना चाहिए कि जिस स्वयम्वर में देवाधिपति का अपमान है, वहाँ किसी भी देवता, दिक्पाल महिपाल का क्या काम है? न आप स्वयम् उस मंडप में जाँय, और न किसी के पास निमंत्रण भिजवाँय।

नारद—महान् सत्य तो यही है, किन्तु यह केवल महात्माओं का मार्ग है। राजनीति दूसरी चीज़ है, राजनीति की पगडण्डियाँ सीधी नहीं है–प्रायः सभी टेढ़ी और तिर्छी हैं। राजनीति में राजा की आज्ञा न मानना–राजा का अपमान है। राजा ही का नहीं, विधाता का अपमान है, परमात्मा का अपमान है। यों तो प्रत्येक जीव जन्म ही से स्वतन्त्र है, परन्तु सब बातों में स्वतन्त्रता बर्ती जाय तो सृष्टि का कोई भी कार्य उचित रीति से न होने पाय। इसीलिये विधि और निषेध का विधान है–अब उस विधान में जब दक्षराज प्रजापति हैं तो उनके अन्तिम निर्णय पर चुप हो जाना दुर्बलता नहीं, पदसम्मान है। फिर यह तो दक्षराज की कन्या का स्वयम्वर है, इसमें मेरा क्या अधिकार है? वे जिसे चाहें बुलायें जिसे न चाहें न बुलायें—

जो अपने पद पै और अधिकार ही पै जान देते हैं।
वे समझाने पै औरों के भला कब ध्यान देते हैं॥

सती—अच्छा, तो आप राजाज्ञा का विरोध न करें–मेरा एक अनुरोध स्वीकार करें।

नारद—कहो, क्या चाहती हो ?

सती—मैं उन्हीं भूतभावन भगवान् शंकर का दर्शन चाहती हूँ जिनको पिताजी स्वयम्वर में नहीं बुला रहे हैं।

नारद—यह तो बड़ा टेढ़ा प्रश्न है।

सती—इसीलिए तो आपसे महानुभाव का दर्वाज़ा खट-खटाया है।

नारद—दक्ष को मालूम होगा तो उनका क्रोध और बढ़ जायगा।

सती—इसीलिए तो देवर्षि का आसरा लिया है !

जो असाध्य है सारे जग को ऐसा साधन मैं चाहती हूँ।
कहते हैं सब जिनको अदृश्य उनका दर्शन मैं चाहती हूँ॥

नारद—मुझे भय है कि कहीं वैराग्यमूर्ति शिव का दर्शन करके तुम भी वैराग्यवती न हो जाओ। यदि ऐसा हुआ तो दक्ष के क्रोध की मात्रा सप्तम आकाश पर पहुँच जायगी, क्योंकि अभी तक वे उस घटना को नहीं भूले हैं कि सृष्टि के आदि में इन्होंने जो सौ मानस पुत्र उत्पन्न किये थे वे इस वीणाधारी के उपदेशों से वैरागी बन गये।

सती—पूज्यवर, मैं तो वैराग्य नहीं अनुराग चाहती हूँ।

नारद—दक्ष के वे सौ पुत्र भगवान् विष्णु का दर्शन करने गए थे, तुम योगिराज शिव को प्राप्त करना चाहती हो—बात तो एक ही है—

अनुराग ही आखिर में जाकर वैराग्य में क्षय हो जाता है।
जिस तरह शब्द विस्तृत होकर आकाश में लय होजाता है।

सती—तब तो मेरे लिए एक ही मार्ग रह जाता है, और वह यह कि पिता की अप्रसन्नता का ध्यान छोड़कर, कुल की लज्जा से मुँह मोड़कर,, राजमहल की शृङ्खलाओं को तोड़कर, बन, पर्वत, उद्यान, श्मशान सब जगह जाऊँ–फिर जहाँ भी अपने इष्ट देव को पाऊं वहीं उन्हें वरमाला पहनाऊं।

नारद—ऐसा ही सङ्कल्प है?

सती—हाँ–पिता के निर्णय की तरह।

नारद—यही हठ है?

सती—हाँ, राजहठ की तरह।

नारद—तो चलो राजकुमारी, अब मैं किसी भी विचार पर विचार न करके तुम्हें आशुतोष भगवान् शंकर के पास–ले जाऊंगा, और उनके दर्शन कराऊंगा, (कुछ सोचकर) परन्तु–पुरुष वेष में तुमको चलना होगा, कारण कि वैराग्य का देवता राग की सामग्री से आजकल पूर्ण विरागी है!

सती—अनन्त उपकार–मैं पुरुषवेष धारण करती हूँ।

नारद—हाँ, जल्दी तैयार हो, मैं उधर ही आरहा हूँ।

(सती के जाने के बाद स्वगत)

अब तो हँसी बहुत बढ़ती जाती है–भाई दक्ष जिन्हें अपना वैरी समझते हैं, पुत्री सती उन्हीं भगवान् शंकर के प्रेममें बावली हो रही है। कदाचित् शिव की हुई यह समाई, वे बनगए दक्षराज के जमाई, तब तो यह हँसी चौदह भुवन में व्याप्त हो जायगी—

गाना (७)

बड़ा होनी का प्रबल बल है।
धनबल, जनबल, और बाहुबल, यद्यपि बल कहलाते हैं।
होनी के बलकी तुलना में सब निर्बल हो जाते हैं।
नहीं इसमें कुछ अलबल है।
बड़े बड़े वैज्ञानिक जो निशि में दिन कर दिखलाते हैं।
होनी के चक्कर में पड़कर निशि दिन टक्कर खाते है।
विकट होनी का दल बल है।

(जाना)
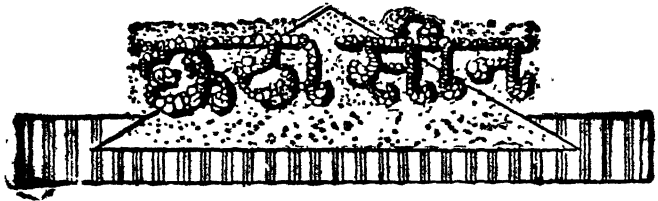
स्थान--श्मशान।

(दो चिताएं जलरही हैं, भगवान् शंकर उन चिताओं के समीप खड़े हुये हैं, सायंकाल के सूर्य का प्रकाश उनके मुख पर पड़ रहा है)

शङ्कर—(स्वगत)
जीवगण सब चाहते हैं, चैन हो आराम हो।
दूर हों सब आपदायें-चित्त को विश्राम हो॥

हो कहाँ विश्राम-मन में स्वार्थ की जब आग है।
हर जगह अपनी ही ढपली और अपना राग है॥

प्यारी श्मशान-भूमि, यह शङ्कर तुझसे क्यों स्नेह करता है, जानती है? तुझे अपने गुणों की खबर नहीं है, मैं जानता हूँ—कि तुझ में क्या गुण हैं। दुनिया अशांत है, और तू शांत है। दुनिया में राग है, और तेरे वातावरण में वैराग्य है—

इस विराट में मनुज देह के पंच भूत मिल जाते हैं।
प्राणी उऋण प्रकृति-ऋण से हो शाँति यहाँ पर पाते हैं॥
यही जगह है-भस्म जहाँ पर चिन्तादल हो जाता है।
एक राम का सत्य नाम अपना प्रकाश फैलाता है॥

संसार के मंच पर छोटे, बड़े, नीचे, ऊँचे, निर्धन और धनवान्, मूर्ख और विद्वान् का झगड़ा है, परन्तु तेरा दर्वाजा-सबके लिए समान रूप से खुला हुआ है। देव-मंडल मुझ से पूछा करता है कि मैं कैलास छोड़कर बार बार श्मशान में क्यों चला आया करता हूं? क्या बतलाऊं-जिस प्रकार सर्दी के दिनों में लोग गर्म जगह पर और गर्मी के दिनों में सर्द जगह पर आया जाया करते हैं, उसी प्रकार मैं भी—जब समाधि लगाने की इच्छा होती है तो कैलास पर, और अपने राम के प्रत्यक्ष दर्शन की लालसा बढ़ती है तो श्मशान में चला आया करता हूँ—

किसी का क्रीड़ा-भवन महल है, मेरे विचरने को यह दिशायें।
किसी को भाती हैं श्याम अलकें, मुझे यह भस्मी-भरी जटायें॥

किसी को संगीत-स्वर सुहाता मुझे पिशाचों की गीतिकायें।
किसी को प्यारी सुवर्णवर्णी मुझे धधकती हुई चितायें॥

(नारद और सती का भिखारियों के वेश में प्रवेश)

नारद—(सती से, शिव की ओर संकेत करके)—
मसान में जो विराजते हैं यही हैं शंकर त्रिशूल-धारी।

सती—(स्वगत)-
मसान है इस हृदय से उत्तम—जहाँ रमे हैं हृदय-विहारी॥

शङ्कर—(श्मशान की ओर सकेत करके, स्वगत) पवित्र-भूमि, तूही मेरी विहार-भूमि है, तेरे ही मन्दिर में स्वच्छन्दता से ताण्डव नृत्य किया करता हूं।

नारद—(सती से) उठाओ आँखें—

सती—(नारद से)-
उठाऊं कैसे ? किसी ने जादू सा कर दिया है।
बिसात इन गागरों की क्या है कि जिनमें सागर सा भरदिया है॥

शङ्कर—(स्वगत) महाभैरवी, संहार मेरी शक्ति है-और तू उसकी सहायक है।

(सती का भूतभावन भगवान् शङ्कर के दर्शन से आल्हादित होकर नेत्र मूँद लेना)

नारद—क्या लोचन तृप्त हो गए ?

सती—(नेत्र खोलकर) नहीं, प्यास और बढ गई—

जाती निहारने को हैं बार बार आँखें।
दो की जगह मुझे दो ईश्वर हज़ार आँखें॥

(स्वगत)- भगवन् ! यह क्या होरहा है ? मेरी अनन्त जन्मों की स्मृति कैसी जाग सी रही है ? अपने अखिल ब्रह्मांड के स्वामी का स्नेह-असीम होकर भी इस समय-इस रूप-माधुरी के सामने-कैसा सीमित होरहा है ? क्या-आज ही सर्वस्व, सदा के लिए, फिर इन चरणों में विलीन हो जायगा ? क्या इसी समय-अर्द्धाङ्गिनि फिर वियोगिनी से संयोगिनी बनकर एक रूप होजायगी ! (प्रकट) अहा हा हाः—

दर्शन की सुधा बरसती है-ऐसी देखी बरसात नहीं।
पी है, पर प्यास नहीं बुझती—

नारद—क्या-यह हँसने की बात नहीं ?

शङ्कर—(चिताओं की ओर देखकर) जाओ, चिताओं में जलने वालो, अपने अपने कर्मानुसार गति पाओ।

(भगवान् शंकर का श्मशान मे जाने लगना)

नारद—(सती से) आगे बढ़ जाओ और भगवान् के चरणों में शीस नवाओ।

सती--पहले आप बढ़िये।

नारद—अहाहाहा—

अनुराग भी मन में पूरा है, संकोच भी तजता गात नहीं।
श्रद्धा भी है, लज्जा भी है, क्या यह हँसने की बात नहीं ?

(आगे बढ़ कर, उच्चस्वर से) जय ! जय ! त्रिशूल-धारी श्मशान-विहारी की जय !

शङ्कर—(जाते जाते ठहर कर) कौन ? कौन मेरा नाम लेलेकर जय बोल रहा है ? इस दुनिया से दूर रहने वाले औघड़ से भी क्या दुनिया वाले मिलने की इच्छा रखते हैं ?

सती—रखते हैं । देवता जब श्मशान में विचरते हैं-तो देवताओं के भक्त श्मशान ही में आकर उनके दर्शन करने की लालसा पूरी कर सकते हैं ।

नारद—प्रभो, हमारे साथी को एक रोग है ।

शङ्कर—तो रोग की औषधि इस बनखण्डी के पास कहाँ है ? किसी वैद्य के पास जाओ ।

नारद—महाराज, हम भूखे भिखारी हैं ।

शङ्कर—तो किसी सदाव्रत बाँटने वाले धनवान का दर्वाजा खटखटाओ ।

सती—(स्वगत) ओह ! कैसी निस्पृहता है ? कितनी निर्लिप्त प्रकृति है।(प्रकट, शिव से) भगवन् ?

शङ्कर—हां-हां—

सती—केवल—

शङ्कर—हाँ-हां, केवल—

सती—अपने चरण छूने की आज्ञा देदीजिए ।

शङ्कर—इस मसानी के चरण छूने से क्या लाभ होगा ?

सती—जीवन सार्थक होगा, जन्म कृतार्थ होगा ।

शङ्कर—यह चरण तो अपवित्र हैं।

सती—नहीं परम पावन हैं।

शङ्कर—धूरि से भरे हैं।

सती—उस धूरि में तो पद्मपराग से भी ज्यादा सुगंधि है।

शङ्कर—नहीं-मसान में पड़ी हुई हड्डियों की दुर्गन्धि है।

सती—भवपते—

देवगण भी धूरि जिन चरणों की पा सकते नहीं।
योगियों के ध्यान में भी जो कि आसकते नहीं॥
भाग्य से अब हाथ आये हैं तो क्योंकर छोड़ दें।
वे अभागे हैं जो पाकर ऐसा अवसर छोड़ दें॥

(शङ्कर के चरणों में गिरना)

शङ्कर—(उठाकर) अच्छा-उठो, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हुई, वरदान मिल गया। अब जाओ-(सती खड़ी ही रहती है) हैं! नहीं जाते ?

सती—कहां जायें ?—

जगत में जीव फिर जायेगा कैसे ब्रह्ममय होकर।
नदी वापिस कभी होती नहीं सागर में लय होकर॥

शङ्कर—मुझ विरक्त से इतनी आसक्ति न करो—

सती— कैसे न करें ?—

एक झलक ही में ज्योतिर्मय उजियाला कर डाला है।
हे सर्पों की मालावाले, मतवाला कर डाला है॥

अच्छा-हम जाते तो हैं, परन्तु आपके द्वारा हमारी मनोकामना जो पूर्ण हुई है-वह याद रहे।

शङ्कर—मनोकामना पूर्ण हुई है-इसका अर्थ ? तुम तो उल्झन में डाल रहे हो ?

नारद—उल्झन तो सुलझ गई महाराज !

शङ्कर—वह कैसे ?

नारद—ऐसे-कि आपने वर-दान दे दिया !

शङ्कर—हैं-वर-दान देदिया? यह कैसी रहस्यमयी बातें हैं ? (नारद का हाथ पकड़कर) तुम दोनों कौन हो ? (गम्भीर दृष्टि डालना और पहचानना) हैं-भिखारियों के वेष में देवर्षि नारद और दक्ष-सुता सती ! छल ! माया ! धोका !

नारद-नहीं—प्रेम, संस्कार, उपासना—

जिनका मन इच्छुक होता है—
वे मन-वाञ्छित फल पाते हैं ।
भगवान् का जो हो जाता है—
भगवान् उसे मिल जाते हैं ॥

(सती और नारद का अपने असली रूप में हो जाना)

शङ्कर—जटिल समस्या आगई। उस दिन प्रजापति के दर्बार में देर से जाने के कारण उनके क्रोध का भाजन बनना पड़ा था, आज उनकी पुत्री सती को मनोकामना पूरी होने का वरदान देकर न जाने किन किन दोषों का दोषी होना पड़ेगा ?

कहां तो मेरी निस्पृहता, कहाँ यह प्रेम का घेरा ?
मसानी, पूरे असमंजस ने तुझको आज आघेरा ॥

उधर अनुराग बढ़ता है, इधर वैराग्य लड़ता है।
कोई चरणों में पड़ता है तो कोई कर पकड़ता है॥

सती—

उधर वैराग्य लड़ता है, इधर आसक्ति बढ़ती है।
विजय श्री देखना है आज किसके हाथ पड़ती है॥

नारद—भगवन्! सच बात तो यह है कि दक्ष-पुत्री सती हृदय से आपको अपना वर वर चुकी है, परन्तु-दक्ष की अभी तक उल्टी ही मति है। इसलिए प्रार्थना है कि आप सती की टेक निभायें, इनके होने वाले स्वयम्वर में आयें, और इन्हें अपनी: अर्द्धाङ्गिनी बनायें।

शङ्कर—जब तक दक्ष का निमन्त्रण न आयेगा, मेरा वहां पहुँचना अनुचित समझा जायगा।

सती—अपनी दासी की लज्जा रखने के लिए आपको सब कुछ करना पड़ेगा?

शङ्कर—मैं समय पर आऊं या न आऊं, तुम्हारी लज्जा की रक्षा अवश्य होगी?

सती—न आने की क्या बात है?

शङ्कर—मैं मसानी हूँ, संहार मेरी नौकरी है, अवकाश बहुत कम मिलता है!

नारद—इस समय आप यहाँ कौन सी नौकरी बजाने आये थे?

शङ्कर—वाह, नौकरी कैसे नहीं बजाने आया था ? देखो-वह जो (चिताओं की ओर सङ्केत करके) दोनों चितायें ठण्डी पड़ी हैं अभी अभी जलकर समाप्त हुई हैं। इनमें जलनेवाले दो शरीरों में दो प्रकार की आत्माओं का निवास था। मृत्यु के पश्चात् मैं ने उन दोनों को अलग अलग स्थान में भेज दिया।

नारद— वे दोनों मृतक कौन थे ?

शङ्कर—धनपति और दिगम्बरनाथ।

यहां पै दोनों का एक पद है, यहां पै दोनों का एक मग है।
मगर यहाँ से जो आगे देखो–तो कर्म का फल अलग अलग है॥

(शिव की इच्छानुसार धनपति नरक में दिखाया जाता है)

यह धनपति साहूकार अपने जीवन में बड़ा ही नरपिशाच था। कितनी ही विधवाओं और कितने ही अनाथों का खून चूस चूसकर कोठीवाल बना था। अपने लिए हमेशा ऊँचा और दूसरों को नोचा समझता था। मन्दिर इसने स्थापित किए–पर किसलिए ? जगत् में सन्मान बढ़ाने के लिए। धर्मशालाएं इसने बनवाईं, पर किस लिए ? राजदर्बार से धर्मालङ्कार की पदवी पाने के लिए—

बड़ा कामी, बड़ा कपटी, बड़ाही नीच दुर्जन था।
सदा बगुला भगत जैसा जगत्में इसका जीवन था॥
कहीं ठोंकर लगी तो पांव ही का दोष बतलाया।
न अपनी आँखके अपराध पर पापी का शासन था॥

(नरक का दृश्य बन्द हो जाता है)

अच्छा, अब दिगम्बरनाथ कीर्त्तन-कार का परिणाम देखो।

(शङ्कर की इच्छानुसार दिगम्बर
नाथ स्वर्ग में दिखलाया जाता है)

यह सच्चा सन्तोषी, निरभिमानी और भगवत् प्रेमी था, दिन भर में मज़दूरी करके जितने पैसे कमाता था उसका दसवाँ हिस्सा भगवान् के हेतु लगाता था—

कभी दौड़ा नहीं था यह पराये धाम और धन पर।
न झूंठे मान का रक्खा था इसने बोझ भी मनपर॥
न इसने भार डाला था धनी पर और निर्धन पर।
सदा अपने ही उद्यम से किया अधिकार जीवन पर॥
हज़ारों तीर्थ व्रत करके हुआ था त्याग से उजला।
यह वह सोना था जो हर बार निकला आग से उजला॥

(दृश्य बन्द होजाता है)

नारद—धन्य! अब हम जान गए-कि आप इसी प्रकार का कर्त्तव्य पालन करने के लिए इस श्मशान में आया करते हैं, परन्तु—

शङ्कर—वाह! अपनी नौकरी का सारा बही खाता बता दिया, फिर भी तुम्हारी 'परन्तु' नहीं गई?

नारद—हां-नहीं गई, कर्त्तव्य पालन और स्नेह में बड़ा अन्तर है। हम देखते हैं-कि आप इस भूमि से स्नेह भी करते हैं।

शङ्कर—हाँ—स्नेह भी करता हूं, इस भूमि से स्नेह भी करता हूँ।

नारद—यह क्यों ?

शंकर—यह इस लिये कि यहां मेरा 'राम' विशेष रूप से रम रहा है। यहां की राख में, यहां की वायु में, यहां के एक एक तिनके में, और यहाँ की असीम तथा अनन्त दिशाओं में तदाकार हो रहा है।

नारद—यह किस तरह ?

शंकर—इस तरह–कि जब कोई प्राणी मरता है–तो उसके घर-वालों को क्षणिक वैराग्य हो जाता है। उस समय वे लोग 'राम राम' की पवित्र–ध्वनि के साथ मुर्दे को यहां लेकर आते हैं और संसार की असत्यता के साथ साथ प्रभु के नाम की सत्यता इस जगह पर छोड़ जाते हैं।

नारद—परन्तु–वह राम नाम हमारी इन आँखों को तो यहाँ प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता ?

शंकर—उसके देखने के लिये दिव्य-दृष्टि चाहिये,लो–मैं अपनी शक्ति से तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाता हूं।

(शंकर की कृपा से नारद और सती उस श्मशान में, सर्वत्र, राम राम देखते हैं)

नारद—धन्य ! धन्य !! जीवन सुफल हुआ, भक्त अपने भगवान् का चमत्कार देखकर कृतार्थ होगया। (सती से) क्यों सती, देखा ?

सती—हां, देखा–परन्तु–

मेरी आखों में मेरा इष्ट है श्रीराम के बदले।
नजर आता है हर का रूप, हरि के नाम के बदले ॥
जगत् में दृश्य लाखों ही सुबह और शाम के बदले।
मगर पर्दे न जीवन में मेरे इद्धाम के बदले ॥
पुजारिन हूं मैं शिव की और मेरे देवता शिव हैं।
यहाँ भी हर तरफ़ देखो सदा शिव ही सदा शिव हैं ॥

(रामराम वाला दृश्य बदलता है और हर जगह 'शिव' 'शिव' दिखाई देता है)

स्थान—महल।

(दक्ष का प्रसूति-सहित प्रवेश।)

दक्ष—नहीं-मैं शंकर को स्वयंवर में नहीं बुलाऊंगा।
प्रसूति— यही निश्चय कर लिया है ?

दक्ष—हां, यही निश्चय कर लिया है।

प्रसूति—क्यों?

दक्ष—फिर वही 'क्यों'? बार-बार 'क्यों'? एक बार कह दिया कि वह भंगड़ी मेरा महाशत्रु है।

प्रसूति—नाथ, आपके यहाँ स्वयंवर का यज्ञ है-इस कार्य में सतोगुण को प्रधानता मिलनी चाहिये, इसलिये मैं कहती हूं कि-तमोगुण के भाव त्याग दीजिए।

दक्ष—मैं तुम्हीं से पूछता हूँ कि वह बैलवाला अपनी हठ नहीं छोड़ता तो मैं अपनी हठ किस तरह छोड़ दूँ?

प्रसूति—इसलिये कि आप बड़े हैं!

दक्ष—पर वह मसानी तो मुझे बड़ा मानता ही नहीं?

प्रसूति—वह न मानें, पर आप मानें।

दक्ष—यह किस लिए?

प्रसूति—यह इसलिए कि बड़ों का आभूषण क्षमा है।

दक्ष—यह आभूषण की बातें, तुम स्त्रियों को ही शोभा देती हैं?

प्रसूति—और पुरुषों को क्या शोभा देता है?

दक्ष—अपनी टेक पर डटे रहना। रानी, मैं उन पुरुषों में हूं, जो बाहर और भीतर एक-से रहते हैं। उनमें नहीं, जो मन में द्वेष रखकर ऊपर से ठकुरसुहाती करते हैं। सती चाहे आजन्म क्वाँरी रहे, पर दक्ष शङ्कर से सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता। सरोवर सागर नहीं होगा, दीपक दिवाकर नहीं होगा, हिम-

खण्ड हिमालय नहीं बन सकता ; इसी प्रकार वह बनखण्डिया मेरा जमाई नहीं हो सकता।

प्रसूति—सरोवर ! दीपक ! हिमखण्ड ! कौन ? वे ? चन्द्र जिनके मस्तक का चन्दन है, गङ्गा जिनकी जटाओं की शोभा है, वासुकी जिनपर वलिहार होकर गले का हार बन गया है ?

दक्ष—बस, प्रसूति बस, मेरी स्त्री होकर तू मेरे शत्रु की–पर पुरुष की, प्रशसा कर रही है ?

प्रसूति—पर पुरुष की प्रशंसा ? नहीं कर रही हूं, पुत्री सती के होने वाले पति के लिए, अपने पुत्र तुल्य जमाई के लिए–ऐसा कह रही हूं।

दक्ष—पर मैं कह चुका हूं कि वह औघड़ किसी प्रकार सती का पति नहीं बनाया जायगा। मैं उसको इस स्वयम्बर में बुलाऊँगा ही नहीं। स्वयवर मैं करा रहा हूं- मुझे अधिकार है कि मैं उसमें किसी को बुलाऊं या न बुलाऊं।

प्रसूति—परन्तु–मैं भी तो आपकी सहधर्मिणी हूं। मेरी अनुमति के बिना आप किस प्रकार इस इच्छा की पूर्ति करेंगे ?

दक्ष—रानी, रानी, तुम्हें इस विषय में इतना हठ क्यों है ?

प्रसूति—स्वामी, स्वामी, आपको शंकर के प्रति इतना क्रोध क्यों है ?

दक्ष—इतना क्रोध क्यों है ? राज्याभिषेक के अवसर पर उस कपाली ने जो मेरा अपमान किया था, वह अबतक मेरे हृदय को जला रहा है। उस जलते हुए हृदय पर, सती ने उसकी

मूर्ति का पूजन करके मानो घी डाल दिया है। अब तुम्हारा इस समय का हठ, उस घी से प्रचण्ड हुई अग्नि के लिए भयङ्कर वायु बन जायगा। प्रसूति, जानती हो—इसका क्या परिणाम होगा?

प्रसूति—क्या होगा?

दक्ष—स्वाहा! सब स्वाहा होजायगा—

यह भवन सारा प्रलय की बाढ़ में बह जायगा।
सृष्टि में संहार-ही-संहार बस रह जायगा॥
दक्ष फिर होगा-न पुत्री दक्ष की होगी यहाँ।
भूत नाचेंगे, चिता की कुण्डली होगी यहाँ॥

(दक्ष का जाना)

प्रसूति—

कह चुकी उस हद तलक जो हद है नारी के लिए।
दौड़ मन्दिर से नहीं आगे पुजारी के लिए॥
अब वही होगा जो है कर्त्तार का सोचा हुआ।
मिट नहीं सकता कभी भी भाग्य का लिक्खा हुआ॥

गाना (८)

दासों की वह कब सुनते हैं, जो प्रभुता के मदमाते हैं।
हित को भी अहित समझते हैं, रस को भी विष बतलाते हैं॥
जो फूल आज है खिला हुआ, कल को वह मुर्झा जाता है।
इस फूल से जीवन पर मन में, हम फूले नहीं समाते हैं॥

हम अज्ञानी जीवों से तो जंगल के पक्षी अच्छे हैं।
वन में दावानल लगने के पहले ही जो उड़ जाते हैं॥
अज्ञान से अपने ही पहले हम व्यूह दुखोंका रचते हैं।
उस चक्र में जब फँस जाते हैं, तो फिर पीछे पछताते हैं॥
ऐ दुनिया के हँसने वालो, इतनी भी हँसी नही अच्छी।
ज्यादा हँसने से आँखों में, आँसू अक्सर भर आते हैं॥

—०—

(जाना)

स्थान—कविराय का मकान।

कविराय—खुशी! खुशी! इस संसार में दो ही आदमियों को सच्ची खुशी होती है-धनराय को या कविराय को। क्योंकि धनराय द्रव्य-कोष है और कविराय शब्द-कोष। धनराय पर लक्ष्मी की कृपा रहा करती है और कविराय पर सरस्वती की। इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई—

दो ही जन इस जगत में करते हैं आनन्द।
भरते हैं जो थैलियां, लिखते हैं जो छन्द॥

जिन दिनों मैं माता के गर्भ में था-उन दिनों भी कविता कामिनी का कान्त होकर अपने कृपा के डण्डे से-उसकी पूरी

पूरी खबर लिया करता था। उस प्राकृतिक सृष्टि के खर्रे-के खर्रे तो याद नहीं रहे; परन्तु बहुत कुछ अब भी याद है। उन दिनों लिखा था—

यह चांद सूरज, यह फूल-पत्ते, जो जग की शोभा बढ़ारहे हैं।
हमीं ने इनको बढ़ाया इतना, जो इतना सम्मान पा रहे हैं॥

ज्यों-त्यों जन्म लेकर जब माता की गोद में आया, तो कविता देवी ने एक चरण और आगे बढ़ाया। माता समझती थी कि मैं रोता हूँ, पर मैं उस अवस्था में भी कविता किया करता था। लेकिन अफ़्सोस! माता का कर्रा हाथ—थपथपाने के बदले—चपत का पुरस्कार दिया करता था उस समय की मुझे एक कविता याद आगई—

जगत में माता की मामता को हमारी बिल्ली प्रचारती है।
उठाती बच्चों को दाँत से है, मगर नहीं दाँत मारती है॥

क्या कहूं, सारी दुनिया नाक़दरी है। मैं अपनी खोपड़ी के पुस्तकालय से कविता के पुलन्दे पर पुलन्दे लुढ़काया करता हूं; परन्तु कोई पूछता ही नहीं। मेरी कल्पना के समुद्र से निकले हुये रत्नों को-परखना तो क्या; कोई देखता ही नहीं। मेरे रात रात भर जाग कर—पैदा किए हुए दोहों का—मूल्य देना तो क्या—कोई उन्हें सुनता ही नहीं। इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई-

चौपाओं की जाति दुपाओं से ज्यादा रस लेती है।
भैंस के आगे बीन बजाओ कान हिला वह देती है॥

बुधुआ--श्रीमान्, मैंने मारखाने की नौकरी नहीं की है, सब काम करने के बाद तुकें मिलाऊं और फिर-उस पर मार खाऊं !

कविराय—अच्छा जा, हमारे बैठने के लिए चौकी लेआ। (बुधुआ जब जाने लगता है तो उसे रोककर) और सुन, हमारी लेखनी और कविता करने की पुस्तक तुकतंरगिणी भी लाना।

बुधुआ—यह तो सब ले आऊंगा-पर तुकें नहीं लाऊंगा।

कविराय—अबे तुकें मँगा मँगाकर तो मैं तुझे तुक्कड़ बनाना चाहता था; पर देखता हूं कि तू भाग्य का बड़ा हेटा है। अच्छा जा, जल्दी से वह सब ले आ। (बुधुआ का जाना) मैं तो सारे संसार को कवि बनाना चाहता हूं; पर कोई बनता ही नहीं। इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई—

चाहो यदि संसार में मिटे भूख और प्यास।।
शब्द शास्त्र को चाटकर, रहो उगलते ग्रास।।

(बुधुआ पुस्तक और चौकी लाता है, कविराय चौकी पर बैठते हैं और पुस्तक खोलते हैं,-फिर बुधुआ से कहते हैं) जा-डब्बी में पान भरकर और ले आ, और उन्हें मेरे पास रखदे, पान के अनुपान बिना कविता होती ही नहीं, (बुधुआ जाता है) इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई—

पान, पुष्प, पत्नी, पय, प्यार, कविके हैं ये पंच पकार।

बुधुआ—(आकर) श्रीमान्, पान तो आज घर में नहीं हैं।

कविराय—तो किसी पान बेचने वाले की दूकान से लेआ।

बुधुआ—उसके लिए पैसे चाहिएँ।

कविराय—अबे उधार ले आ !

बुधुआ—उधार कोई नहीं देगा सरकार।

कविराय—क्यों ?

बुधुआ—यों कि दूकानदारों ने उधार का व्यवहार बन्द कर दिया है।

कविराय—ये दूकानदार भी बड़े ठसकदार होगये हैं।

बुधुआ—दूकानदारों का इसमें क्या दोष है ? उधार लेनेवाले ग्राहक तो दूकानदारों के माल को अपने बाप दादा का माल समझते हैं। लेते समय तो ले आते हैं-परन्तु दाम देते समय मामा नाना याद आते हैं !

कविराय—अबे जा, तो पान के स्थान में थोड़ी सी सुपारियाँ ही ले आ। भाग, भाग, मेरी खोपड़ी से मिसरा उतर रहा है।

बुधुआ—(कविराय के जूते उठाकर) भागो ! भागो ! श्रीमान् जी की खोपड़ी से मिसरा उतर रहा है।

कविराय—अबे यह जूते कहां लिए जाता है ?

बुधुआ—घर में।

कविराय—क्यों ?

बुधुआ—यों कि आप की खोपड़ी से मिसरा उतर रहा है ; कहीं ये बेचारे दब न जायँ।

(जाना)

कविराय—बड़ा गँवार है। इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई--

सेवायें शठ-दास की हैं जीका जंजाल ।
तंग जूतियाँ पाँव में छाले देतीं डाल ॥

अच्छा, अब अपनी प्रतिमा को सुनाने के लिए कोई कविता बनानी चाहिए।

'मद्‌वाली, मतवाली, रसवाली, विषवाली, ।
लटकाली-काली लटकाली हैं जो गालों पै ॥
मानों उठ आई, उमड़ाई, अति घिर आई ।
छाई काली घटा चन्द्रकला की उछालों पै ॥
कहैं कविराय, कैधों सर्पन के झुंड यह ।
लिपट रहे हैं श्वेत चन्दन की डालों पै ॥

तीन मिसरे तो बन गये, चौथा और भेज खोपड़ी की देवी! (कुछ सोचकर) आया-आया !

बुधुआ--(आकर) हाँ, आया ! आया !

कविराय--अबे मिसरा तो नहीं आया, तू आया। तेरे आते ही मेरा मिसरा चला गया।

बुधुआ--मिसरा चला गया-तो न्योता भेजकर फिर बुला लीजिए।

कविराय--अबे यह कनागतों के मिस्सर नहीं हैं जो न्योतें के नाम से एक एक की जगह दस-दस दौड़े चले आयेंगे। यह कविता के मिसरे हैं, बड़े नखरों और मिजाजों से तशरीफ़ लायेंगे। अच्छा हाँ बोल, क्या कहता है ?

बुधुआ--एक सज्जन आपसे मिलने आये हैं।

कविराय--अरे यह सब सज्जन ऐसे ही समय पर मिलने आते हैं जब मैं कविता करने बैठता हूं ?

बुधुआ--सरकार जब आगमन का तार जारी है, तो विचारों के साथ साथ दूसरों के भी आने की बारी है !

कविराय--अच्छा कौन आया है ?

बुधुआ--वैद्यजी !

कविराय--जा, कोई बहाना ढूंढकर उन्हें टाल दे। (बुधुआ खड़ा रहता है) अबे तू जाता नहीं है, क्या कर रहा है ?

बुधुआ--बहाना ढूंढ रहा हूं।

कविराय--बड़ा मूर्ख है, अबे जाता है कि मार खायेगा। (बुधुआ जाता है) हां, क्या कवित्त बनाया था ?--मदवाली, मतवाली, रसवाली, विषवाली,--

बुधुआ--(आकर) सरकार ! सरकार !

कविराय--फिर आगया गँवार, क्या है ?

बुधुआ--वैद्य जी तो चले गये, पर द्राक्षारिष्ट आप की सेवा में पहुंचाने के लिए मुझे देगये हैं।

कविराय--तो-ले आ, ले आ, द्राक्षारिष्ट ले आ।

कविता होती ही नहीं तब तक कुछ स्वादिष्ट।
जब तक पीने के लिए मिले न द्राक्षारिष्ट ॥

बुधुआ--उसके पीने में तो पाप है !

कविराय--अरे मदिरा पीने में पाप है, द्राक्षारिष्ट पीने में पाप नहीं है।

बुधुआ---भई वाह ! पीनेवालों ने भी पीने के क्या नये नये ढंग निकाले हैं। मदिरा के नाम से नहीं तो-द्राक्षारिष्ट के नाम से मटके के मटके रीते कर डाले हैं।

(जाना)

कविराय—हां क्या लिखा था?-मदवाली, मतवाली, रसवाली, विषवाली--

बुधुआ -(आकर) सरकार ! सरकार !

कविराय—फिर आगया लबार, क्यों क्या है ?

बुधुआ--भोजन तैयार है।

कविराय--अबे भोजन को चूल्हे में डाल, देखता नहीं कि मैं इस समय कविता कर रहा हूं। वह द्राक्षारिष्ट पीने के लिए नहीं लाया ?

बुधुआ--उसे अब भोजन ही के साथ पी लीजिएगा।

कविराय--बड़ा नालायक़ है। जा, जबतक मेरे कवित्त का चौथा चरण मस्तिष्क से नहीं उतरेगा तबतक भोजन का ग्रास भी गले के नीचे नहीं उतरेगा। (बुधुआ गया) हाँ-कितना लिखा था?-मदवाली, मतवाली, रसवाली, बिषवाली !

बुधुआ--(आकर) सरकार ! सरकार !

कविराय--अबके क्या लाया समाचार ?

बुधुआ--भोजन ठण्डा हो जाने के कारण मालकिन गरम हो रही हैं।

कविराय--अबे तुझपर और तेरी मालकिन पर लेखनी की मार (मारना)

बुधुआ—हाय ! मारडाला ! मारडाला ।

(कविराय की स्त्री प्रतिमा का प्रवेश)

प्रतिमा—क्या है ? क्या है ? बुधुआ !

बुधुआ—सरकार ! मेरी खोपड़ी पर मिसरा उतर रहा है !

प्रतिमा—(कविराय से) क्यों जी, तुम न नहाओगे न खाओगे, न किसी से बोलोगे, न किसी से मिलोगे, दिनरात इस कविता ही की पगलई में पड़े रहोगे ?

कविराय—प्रतिमा, तू ठीक समय पर आगई । मेरा कवित्त अधूरा रहा जाता था । अब पूरा होजायगा, लगा–एक पद तू लगा ।

प्रतिमा – नहीं, मैं तो पद नहीं लगाऊंगी, पद लगाकर क्या मैं अपने स्वामी का अपमान करूंगी ?

कविराय—अरी एक ही चरण की तो बात है, लगा दे ।

प्रतिमा—कैसे लगादूं ? मैं चरण कैसे लगा दूँ ? मैं स्त्री हूं और आप मेरे पति हैं ।

कविराय—अच्छा तो इस तरह बाल खोलकर मेरे सामने खड़ी होजा। (प्रतिमा के बाल खोलकर अपने सामने खड़ी करके) हे मेरी शिखरिणी ! हे मेरी हरिगीतिका ! हे मेरी मालिनी ! हे मेरी घनाक्षरी और हे मुझ दोहे की चौपाई ! (बाल छूकर) अब मेरा मिसरा बँध जायगा ।

प्रतिमा—यह क्या करते हो ?

कविराय—मिसरा बाँधने की तदबीर करता हूँ ।

बुधुआ—(स्वगत) पर यहां तो मिसरा खुला हुआ है।

कविराय—हाँ, अब प्रतिमा के सामने-प्रतिभा काम करेगी ?

"मदवाली, मतवाली, रसवाली, विषवाली, ।
लट काली-काली लटकाली हैं जो गालों पै॥
मानों •उठ आई उमड़ाई, अति घिर आई।
छाई काली घटा चन्द्रकला की उछालों पै॥
कहें कविराय, कैधों सर्पन के भुण्ड यह।
लिपट रहे हैं श्वेत चन्दन की डालों पै॥
काली रात, काली घटा, काले काग, काले नाग।
काले काले भौंरे हारे काले काले बालों पै॥"

बनगया, बनगया, चौथा चरण भी बन गया।

प्रतिमा—देखो जी, तुम इस कविता की पगलई में मेरी भी हँसी करा रहे हो और अपनी भी।

कविराय—नहीं, नहीं, तुम न होतीं तो आज मेरा कवित्त ही पूरा न होता। मैंने आज से तुम्हें अपना गुरु बनाया।

(हाथ जोड़ना)

प्रतिमा—यह आप क्या करते हैं पतिदेव ? मैं तो आपके चरणों की धूलि हूं, आपकी स्त्री हूं।

कविराय—हाँ, कवि की स्त्री ही उसकी गुरु होती है। इस संसार में आकर दोही से प्रेम करना चाहिए, स्त्री से या परमात्मा से। इसलिए ऐ मेरे परमात्मा, मैं तुझे नमस्कार करता हूँ—

घरवाली को गुरु जो कि बना लेता है ।
कविता के लघु गुरु का गुर पा लेता है ॥
इसलिए, तुही सब छन्दों की दाता है ।
गृहमाता ही कविवर की गुरु-माता है ॥

गाना (९)

कविराय--

कवियोंमें यदि गुरुका पद चाहो पाना, तो घरवाली होको गुरु सदा बनाना॥
अलङ्कार के साथ-भाव, रस सभी यहाँ पर मिल जाते हैं ।
भाँति भाँति के छन्द मनोहर नित्य नए सम्मुख आते हैं ॥
नारि नवरस की होती खान, समझते इसको चतुर सुजान ॥
केशों में शृङ्गार, अधर में हास्य, कुचों मे वीर और करुणा है नयनों में ।
भृकुटी में वीभत्स, भाल में शांत, हृदय में अद्भुत, रहता रौद्र कुवयनोंमें॥
भयानक चितवन में पहचान ।

प्रतिमा—हुआ क्या आज तुम्हें श्रीमान् ?
बुधुआ—उठा है कविता का तूफान् ।
बचाना—हे मेरे भगवान् !
कविराय—जो शब्द शास्त्र का चाहो बड़ा खजाना ।
तो घर वाली ही को गुरु सदा बनाना ॥

(सबका जाना)

—o—

स्थान—स्वयम्बर का मण्डप ।

(मण्डप में भगवान् शङ्कर को छोड़ कर-ब्रह्मा, नारद, इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, यम, शुक्राचार्य तथा अन्यान्य देवता, नृपाल, दिक्पाल, आदि विराजमान हैं, देव कन्यायें गाती हैं)

गाना (१०)

देव कन्याएँ—

आली आज सुघर घड़ी आई, मण्डप में शोभा सरसाई ।
कली कली खिलकर हँसती है, डार डार लहराई ॥
राजकुमारी, सती पियारी, बनी बनेगी सजकर साज ।
ब्रह्मचारिणी का प्रवेश होगा गृहस्थ—आश्रम में आज ॥
जय जय की ध्वनि से देता है जग इसलिए बधाई ।
खुशी छाई, मन भाई, हर्षाई, हुलसाई ॥

(दक्ष का कविराय सहित प्रवेश)

कविराय—बोलो-प्रजापति दक्ष महाराज की जय। देवताओ, दिक्पालो और महिपालो, राजराजेश्वर प्रजापति दक्ष महाराज की ओर से आप सब सज्जनों का स्वागतः—

द्विज-दल-दानव-दिविज-दिक्पाल-दल,
द्वीपन के दक्ष, दक्ष-द्वारे दीपमान हैं॥
आये आज अमर, अभीक, अवदात, अति,
अवनि-अधीश, अद्वितीय अर्थ-खान हैं।
सुन्दरी, सुरूपवती सती के स्वयम्वर में,
सैकड़ों समर्थवान् साजते सुजान हैं॥
कहें कविराय, जिसे कन्या अंगीकार करे,
कर्म्म के कुशल ऐसे कौन कान्तिवान हैं॥

ब्रह्मा—स्वयम्वर का समय हो गया-राजकुमारी को बुलाया जाय, वह वरमाला लेकर आय।

(चोबदार का जाना)

कविराय—
जग में जग ज्योति रही जिनकी, जो जीवन-ज्योति जगाती हैं।
सुरसरि जो हैं सुन्दरता की, सन्तत सनेह सरसाती हैं॥
वर वरने को वरमाल लिए, वेही वरदात्री आती हैं।
देखें वे हार किसे देकर, जय किसको आज दिलाती हैं॥

(सती का सखियों-सहित प्रवेश)

जय जय राजकुमारी सती की जय।

गाना (११)

सती की सहेलियाँ—

संग सखियां सारी, पधारी रंगभूमि सती प्यारी ।

हाथ में जयमाल लिए प्यारी, दुलारी ॥

सर पै है सारी सँवारी, सुमन्द-मन्द चलती अनोखी चाल ।

सुर हो मगन, बरसें सुमन, क्या बहार छाई, मनभाई, सरसाई,

जब आई रंगभूमि सती प्यारी ॥

—०—

नारद—प्रतिमा, तुम आगे आगे होजाओ, और राजकुमारी को उपस्थित सज्जनों का परिचय कराओ।

प्रतिमा- जो आज्ञा। (सती से) प्यारी, इधर देखिए- यह महाराज इन्द्र विराजमान हैं-जो स्वर्ग के स्वामी माने जाते हैं, सुरेन्द्र कहलाते हैं।

सती—सखी, सुरेन्द्र सुन्दर अवश्य हैं, परन्तु इनकी सुन्दरता पर इनकी अर्द्धाङ्गिनी शची का अधिकार है; क्योंकि इनका विवाह हो चुका है। एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री मे विवाह करना दुराचार है, मुझे तो ऐसा वर चाहिए-

जो सदा अकेला रहता हो, संयम से समय बिताता हो ।

फिर चाहे वह सुरनाथ न हो, भूतों का नाथ कहाता हो ॥

प्रतिमा—अच्छा तो इन पर दृष्टि डालिए-यह भगवान् वरुणदेव हैं, और यह भगवान् अग्निदेव।

सती –वरुणदेव तो जल के प्रभु हैं और अग्निदेव तेज के मालिक हैं। मेरा स्वामी तो वह हो सकता है–

जो धाम हो शीतलता का भी और तेज में भी भरपूर रहे।
फिर सदा योग बल से अपने, इन दोनों ही से दूर रहे॥

प्रतिमा–अच्छा, तो इस ओर आजाइये। यह कुवेर महाराज हैं–इनको अपनाइये।

सती–कैसे अपनाइये? केवल धन ही सारे गुणों का स्थान नहीं है, धनवान् का ही सब जगह मान नहीं है–

धनवान् से वह निर्धन अच्छा, जिसमें तप का उजियाला हो।
फिर चाहे महलों के बदले, मरघट का रहनेवाला हो॥

प्रतिमा–अच्छा तो आगे बढ़िए–वह भगवान् यम बैठे हुए हैं, उन्हें अवलोकिए।

सती–इनका वेश देखकर तो मुझे भय लगता है। ऐसा भयानक मुख भी भला किसी बालिका को जीत सकता है? मुझे तो ऐसे पति की लालसा है–

भयानक वेष हो; फिर भी कभी भय का न दाता हो।
गरल पीता हो खुद, लेकिन अमृत जग को पिलाता हो॥

प्रतिमा–तो फिर इन बूढ़े शुक्राचार्य को वर लीजिए।

सती–सखी, बुढ़ापे में यह एक युवती को वरने के लिए आगये, इन्हें लज्जा नहीं आई? बस प्रतिमा, मैं देख चुकी इन सब की सुघराई

प्रतिमा –उधर कुछ देवगण और भूपगण और विराज रहे हैं।

सती--अब किसी की ओर जाने की आवश्यकता नहीं है। मन एकाग्रता को प्राप्त हो गया। जिसका कुछ दिन पहले हृदय में निवास था-अब वह रोम रोम में व्याप्त होगया।

गंगा के जल को पाके पिये कूप का जल कौन ?
रहते हुए अमृत के; करे पान गरल कौन ?
चक्खे रसाल छोड़ भला नीम के फल कौन ?
पारस को प्राप्त करके हो तांबे को विकल कौन ?
त्रैलोक्य भला कैसे सुहाए इस आंख को ?
त्रैलोक्यपति त्रिनेत्र हैं भाए इस आंख को॥

कविराय—(स्वगत) भई वाह! सब डूब गये! इस पसन्द के बढ़ते हुए दरिया में-यह लाल, यह हीरे, यह मोती, यह नीलम, यह पुखराज और यह मूंगे सब डूब गये। कोई भी विल्व-पत्र की तरह नहीं तैरा। इस बातपर मुझे एक कविता याद आगई—

भोजन उसको कुपथ है जिसके तन में रोग।
भाग्यवान् के वास्ते, मिलता मोहन भोग॥

सती—आओ, आओ, मेरे हृदय के निवासी, मेरी आंखों के वासी, सुखराशी, अविनाशी, प्रत्यक्ष मेरे सामने आओ। निराकार भगवान, नराकार में प्रकट होकर, इस क्षीणाकार नारी को अपनी जटाओं की छाया में सुरक्षित बनाओ।

गाना (१२)

अबला का लाज बचाने को आजा आजा डमरूवाले।
जीवन की ज्योति जगाने को, आजा आजा डमरूवाले॥

होता है सत्य सनेह जहाँ, प्रियतम हैं निःसन्देह वहाँ ।
यह अटल नियम बतलाने को, आजा आजा डमरू वाले ॥
दासी प्रण पर है अड़ी हुई, वरमाल लिए है खड़ी हुई ।
यह हठ, यह टेक निभाने को, आजा आजा डमरू वाले ॥

—o—

दक्ष—अरे ! यह क्या बकरही है ?

सती—अब लज्जा का हार-अपने प्राणनाथ पै बलिहार करके- मैं स्पष्ट कहती हूँ कि जिसको एक बार अपने मन में वर चुकी हूँ, वही मेरा वर है। सती नारी का धर्म भी यही है कि-एक बार मन से भी जिसको अपना पति बनाये-फिर जीवन-पर्य्यन्त उसी की होजाये—

माना कि मेरे आगे अमर दल अनेक है ।
मैं क्या करूं कि मेरी अमरनाथ टेक है ॥
इस बुद्धि में बस एक ही अबतो विवेक है ।
उस एक की मैं हो चुकी जो सबका एक है ॥

आओ, आओ, मेरी लज्जा के धागे से बँधे हुए मेरे महाराज, अपनी दासी की लज्जा रखने के लिए आओ। इस हार की हार को हरने के लिए, मसान में विहार करने वाले हर, संहार-शक्ति के देवता हर, इन पुष्पों की सुगन्धि से बढ़ी हुई मेरी प्रीति की सुगन्ध वायु में उड़ते हुए आजाओ। मैं तुम्हारे गले में यह हार डालकर तुम्हें अपने गले का हार बनाऊंगी, तुम्हें अपना बना बनाकर तुम्हारी बनी बन जाऊंगी।

तब तक यह नातक बना रहे जब तक कि चाँद चाँदनी रहे ।
तुम बने रहो, मैं बनी रहूं, हम बने बनी में बनी रहे ॥

ब्रह्मा—यह क्या रहस्य है-जो समझ में नहीं आरहा है ?

नारद—देव, पुत्री सती का मन भगवान् शंकर को अपना रहा है । आप तो दक्ष भाई को प्रजापति बनाकर तपस्या में लीन होगये,इधर सती के मन-मानसमें-पूर्व संस्कार के कारण-भगवान् शंकर आसीन होगए ।

ब्रह्मा—तो इसमें दोष ही क्या है ? शंकर का पद तो सब देवताओं से बड़ा है । दक्ष ने उन्हें स्वयम्वर के लिए आमन्त्रित न करके उनका फिर अपमान किया है ।

दक्ष—अपमान ? उस मसानी को आमन्त्रित न करने में उसका अपमान ? इस भंग धतूरा चबाने वाले,बैलवाले को यहाँ स्थान न देने में उसका अपमान ? कैसे हुआ ? जो मान के योग्य ही नहीं है, उसका अपमान कैसे हुआ ? बूढ़े पिताजी, आपका इस समय मुझे इस प्रकार झिड़कना ठीक नहीं ।

ब्रह्मा—देखो, मैं कहे देता हूँ कि संहार-शक्ति से उलझना ठीक नहीं ।

नारद—इस संहार ही की बात पर तो दक्ष भाई की भगवान् शंकर से अनबन है ।

ब्रह्मा—यह दक्ष का गँवारपन है ।

दक्ष—पिताजी, मुझे शंकर का अपमानी कहते-कहते-स्वयं आपने मेरा भी अपमान कर डाला ? मेरी प्रजापति की पदवी पर ध्यान न देकर, भरी सभा में मुझे गँवार कह डाला ?

ब्रह्मा—अरे तुझे प्रजापति किसने बनाया है? मैंने। तुझे इस पदवी पर किसने पहुँचाया है ? मैंने। इतने ही दिनों में तू इतना मानवाला बनगया ? कल के लड़के, कुछ ही दिनों में तू गर्व का भरपूर प्याला बन गया ?

नारद—यही तो हँसने की बात है—

जब तक मनुष्य कंगाल रहे, तब तक उत्पात नहीं करता।
जब वही धनी हो जाता है तो सीधी बात नहीं करता॥

ब्रह्मा—जा, जा, मैं तुझे शाप देता हूं कि तू जिन शंकर का अपमान कर रहा है, उन्हीं के द्वारा तेरा गर्व हरण होगा। और (सती से) बेटी सती, तुझे वरदान देता हूँ कि-जिन देवाधिदेव महादेव को तूने अपने मन में स्थान दिया है-उन्हीं से तेरा पाणिग्रहण होगा—

जहां बड़ों का है नहीं आदर और सत्कार।
उस समाज में बैठने पर भी है धिक्कार॥
शिव, अपने में लय करो, तुम यह द्वेष प्रपञ्च।
क्षमा-याचना पूर्ववत् करता नहीं विरञ्च॥

(ब्रह्मा का जाना)

इन्द्र—दक्षराज, जब आप जानते थे कि-सती ने शंकर को अपनाया है-तो आपने हम सब को यहाँ बुलाकर-क्यों अपमान के योग्य बनाया है ?

दक्ष—मैं सती को इस हठीलेपन का दण्ड दूंगा।

नारद—अब किसी को भी सती को दण्ड देने का अधिकार नहीं। सती शंकर की नारी है, शंकर की नारी की ओर आंखें निकालने का किसी को अख्तियार नहीं। (देवताओं से) देवगण, तुम अपना अपना अपमान मत समझो, तुम इस समय तक भूल रहे थे-जो सती को दक्ष की पुत्री समझ रहे थे, यह साक्षात् शङ्कर की महाशक्ति जगदम्बा है-इसे प्रणाम करो।

सती--

सोरहे कहाँ मेरी बिरियाँ, क्यों नाथ नहीं तुम आते हो ?
है मेरी हँसी सो तुम्हारी हँसी क्यों अपनी हँसी कराते हो ?
हे जीवनपति, होती है अपत, आती है विपत, पत जाती है ।
हो आपके होते यह हालत, कुछ लाज न आपको आती है ?

दक्ष--हाँ, हाँ, बुला, बुला, उस हिमायती को बुला, मैं भी तो देखूं कि वह तेरी वरमाला कैसे ग्रहण कर लेगा ?

सती--हां, हां, करलेगा, करलेगा, साकार रूपमें नहीं--तो निराकार रूप में-वह मेरी वरमाला ग्रहण करलेगा ।

दक्ष--(तल्वार निकाल कर) मेरी तल्वार, तू क्यों नहीं करती है इस निर्लज्ज पर वार । (तल्वार मारना चाहता है, प्रसूति आजाती है ।)

प्रसूति -ठहर जा-ओ-तल्वार !

दक्ष--प्रसूति, तू इस जगह भी आगई करने तकरार ?

प्रसूति--तकरार नहीं, अपने तेज का बल दिखाउंगी । इस अत्याचार की तल्वार को दया का पाठ पढ़ाऊंगी ।

(दक्ष की तल्वार में से दूध की धारा भरती है । उधर सती आकाश में वरमाला फेंकती है, सती की माला को गलेमें धारण किये हुए भगवान् शंकर प्रकट होते हैं । देवगण सती और शंकर की ओर शीस झुकाते हैं ।)

सब देवता--जय ! जय ! जगद्धात्री, जगज्जननी, जगदम्बा की जय । जय ! जय ! त्रिलोकीनाथ भगवान् त्रिलोचन की जय ।

ड्राप सीन

—o—

ऊषा-अनिरुद्ध

इस नाटक का मूल्य ।।।

स्थान—दण्डकारण्य

(साधु वेश में लङ्कापति रावण का-श्रीसीता जी का हाथ पकड़े हुए और उन्हें खींचते हुए आना)

सीता—लाजकर, निर्लज्ज, लाजकर, अपनी नहीं तो इस रुद्राक्षी माला की लाजकर, इस कमण्डल और इस मृगछाला की लाजकर, इस महात्मा-वेश की लाजकर, इस आर्य्य-देश की लाजकर।

रावण—हूँ-लाजकर! लाज तो स्त्रियों का शृङ्गार है। लङ्केश का शृङ्गार तुझे लङ्का लेजाना है-

था बहुत दिन से जो अनुसन्धान पूरा होगया।
आज मेरा स्वर्ग का सोपान पूरा होगया॥
तृप्त मैं होता न तेरी एक चुटकी भीख से।
मान मेरा और तेरा दान पूरा होगया॥

सीता—पराई नारि का-चोरी से-हरण करने वाले दुरात्मा, ठहर तो जा, रघुकुल के सिंह अभी-स्वर्णमृग का आखेट करके आयेंगे और तुझे इस दुराचार का फल चखायेंगे।

रावण—घर से निकाले हुए एक मनुष्य का गुणगान करने वाली बावली, उसने तो तुझे सोने का हिरन तक लाकर नहीं दिया, और मैं-अपनी सम्पूर्ण सोने की लङ्का तेरे चरणों में अर्पण करने को तैयार हूँ:—

बन महारानी, न उन वनवासियों को प्यार कर।
स्वर्णवर्णी, स्वर्ण की लङ्का पै चल अधिकार कर।

सीता—पामर, पातकी, तेरी वह सोने की लङ्का मेरे स्वामी के चरणों से पवित्र हुई पञ्चवटी की धूल के समान भी नहीं है। जानता है सती को सताने का क्या परिणाम होगा?

रावण—क्या होगा?

सीता—विपत्तियां चारों ओर से घेर लेंगी।

रावण—लक्ष्मीवान् विपत्तियों की पर्वा नहीं करता।

सीता—यह अभिमान जाता रहेगा।

रावण—शूरवीर का अभिमान किसी समय नहीं जाता।

सीता—शूरवीर? कौन कहता है तू शूरवीर है? शूरवीर स्त्रियों पर अन्याय नहीं करते हैं। शूरवीर नारि जाति का अपमान नहीं करते हैं। जिस समाज में अबलाओं का आदर नहीं, सतियों के सतीत्व का सम्मान नहीं, उस समाज, उस जाति, उस देश का नाश सदैव हुआ है-और होगा। इसीलिए मैं फिर कहती हूँ-वंश मिट जाएगा।

रावण—काल को क़ैद में रखने वाले रावण का?

सीता—हाँ, हाँ, रावण का; सर कट जायगा।

रावण—शङ्कर पर स्वयं सर काट काट कर चढ़ाने वाले दशानन का ?

सीता—हां-हाँ-दशानन का; राज्य नष्ट होजायगा। न निश्चरदल रहेगा, न लङ्का रहेगी, और-और-घर में दीपक जलाने के लिये-कुटुम्ब की कोई विधवा तक न रहेगी।

रावण—बस,बस, अब नहीं सुन सकता। तुझे बरियायी ही रथ पर डालकर लेजाना होगा। (सीता को उठाकर, जाते जाते)

है लोहा स्वर्ग से पाताल तक मेरी भुजाओं का।
मेरे आगे झुका रहता है मस्तक देवताओं का॥

सीता—(जाते जाते, नेपथ्य तक):—

हां ! राघव, रघुकुलतिलक, रघुकुलपति, रणधीर।
रघुनन्दन, रघुवंशमणि, रघुराई, रघुवीर॥

(रावण और सीता का जाना,
दूसरी ओर से जटायु का आना)

जटायु— हैं ! यह पुकार कैसी आई ? रघुवीर ! रघुराई !- यह तो पहचानी हुई पुकार है ! (कुछ ठहरकर) माता सीता की पुकार है ! (सामने देखकर) हैं ! एक राक्षस उन्हें बरियायी रथ में लिए जा रहा है ! वृद्ध जटायु, इस समय तेरा क्या कर्त्तव्य है ? (कुछ सोचकर) ओह, कर्त्तव्य ढूंढ रहा है मूर्ख ? हृदय में ध्वंस की आंधी उठी है, नेत्रों से विनाश की बिजली निकल रही है, बूढ़ी भुजाओं का रक्त संहार के लिए

ज्वालामुखी की भांति खौल रहा है, फिर भी कर्त्तव्य ढूंढ रहा है पागल ? अबला पर अत्याचार होता हुआ देखकर भी-सती का करुणाक्रन्दन सुनकर भी-जिसके हृदय में परोपकार लहरें नहीं मारता; वह इस संसार में जीवित रहता हुआ भी मृतक के समान है। एक तुच्छ पक्षी काक भी-जब किसी काक पर आपत्ति देखता है तो काँव कांव करके बस्ती भर के काकों को इकट्ठा कर लेता है-फिर तू तो पक्षीराज है ? यह न सोच कि असभ्य जाति में उत्पन्न होने वाला-अशिक्षित कहलाने वाला और जङ्गल में रहने वाला गीध है। हृदय और हृदय की निधि दया तो तेरे भीतर भी छुपी हुई है ? संसार और संसार के सभ्य समाज को दिखादे कि हम हिंसक जाति वाले भी परोपकार करते हैं, और वह परोपकार-वचनों से नहीं-प्राणों की आहुति देकर करते हैं। बस-देर न कर, या तो माता का उद्धार कर-नहीं तो पृथ्वी माता के वक्षस्थल पर अपनी बलि के रक्त से सती-सेवा की एक करुण कहानी अङ्कित करदे।

(तेजी के साथ प्रस्थान)

राम—(नेपथ्य से)

हे मृगो, मार्ग दिखलाउ मुझे, मेरी मृगनयनी कहाँ गई ?
कोकिले, कूककर बतलादे, वह कोकिलवयनी कहां गई ?
हन्सो, मत हँसो, बताओ तो चलकर उस राजहंसिनी को।
बनके वृक्षो, देखा तुमने बनदेवी जनक-नन्दिनी को ?

(लक्ष्मण सहित प्रवेश करके) नहीं मिलेगी, लक्ष्मण, इस वनमें सीता नहीं मिलेगी, पृथ्वी, आकाश, पाताल, सब मौन हैं। वन, पर्वत, सरोवर सब चुप हैं। कोई भी पता नहीं बताता। कोई भी उत्तर नहीं देता।

लक्ष्मण—श्रीपते,

राम—मत कहो श्रीपते। अब मैं श्रीपति नहीं हूं। अयोध्या में तो राज्यलक्ष्मी ने मेरा हाथ छोड़कर मुझे राजा से योगी बनाया और इस वन में गृहलक्ष्मी ने साथ छोड़कर योगी से वियोगी की अवस्था को पहुँचाया।

लक्ष्मण—हाय ! मैं मूर्ख उस शब्द के धोखे को समझ जाता तो कुटी पर माता जी को अकेली छोड़कर आपके पास कदापि न आता।

राम—तुम्हारा दोष नहीं है लक्ष्मण। यह मेरे ही भाग्य का दोष है। सीता के साथ यह वन भी मुझे इन्द्र की अमरावती नगरी के समान था। पक्षियों का प्रातः कालीन कलरव, झरनों का झर झर निनाद, शीतलमन्द और सुगन्धित पवन का प्रवाह, मृगछौनों की उछल कूद का उल्लास—देख देख कर मैं अयोध्या के राजसुखों को भूल बैठा था। स्फटिक शिला पर हम दोनों सम्राट् और सम्राज्ञी की भाँति बैठा करते थे। सिंहादिक वन के जीव पहरा देते थे। वृक्ष अपनी डालियों से चंवर डुलाते थे। चन्द्रमा चांदनी से स्नान कराता था—और सूर्य किरणों से शक्ति पहुँचाता था। सच कहता हूँ अनुज, विधाता मेरे इतने सुख को भी सहन न कर सका और बुद्धि पर ऐसा पर्दा डाल दिया कि माया-मृग मुझे स्वर्ण-मृग दिखाई देनेलगाः—

वो मृगतृष्णा की लहरें थीं, जिन्हें मैं स्वच्छ जल समझा।
लपट थी आग की, जिसको कि सुन्दर मोरछल समझा॥
हलाहल से भरा है स्वर्ण-घट, इतना न छल समझा।
सदा की भाँति ही-आखेट इस मृग का सरल समझा॥
किसे मालूम था निश्चर कपट करने को आया है?
हृदय की मणि चुराने के लिए सोना दिखाया है॥

लक्ष्मण—चलिए, अभी समय है, और ढूँढें, शायद पता लगजाय!

राम—चलो, परन्तु आशा नहीं है, आज प्रातःकाल ही से मेरी बायीं आँख फड़क रही थी, प्रकृति पहले ही से इस दुर्घटना की सूचना दे रही थी-

अधिक ताप से तप्त हो लोहा जब गल जाय।
तो दारुण सन्ताप से, क्यों न हृदय अकुलाय॥

(लक्ष्मण सहित प्रस्थान)

गाना (१३)

राम—(नेपथ्य में)-

होती थीं कभी शीतल आँखें, वन की सुन्दर हरियाली से।
अब तो एक आग निकलती है, वृक्षों की डाली डाली से॥

(सती सहित शङ्कर का प्रवेश)

सती—नाथ, जब से अगस्त्य ऋषि के आश्रम पर आपने राम नाम की व्याख्या की है-तब से आप के हृदय की कुछ

अद्भुत अवस्था हो रही है ! शरीर पुलकायमान हो रहा है ! नेत्र किसी महा आनन्द का पान कर रहे हैं ! आप तो इस बन की शोभा भी नहीं निरख रहे हैं ?

शङ्कर—प्रिये, राम नाम के आनन्द से बढ़कर त्रिभुवन में कोई दूसरा आनन्द नहीं है :-

रकार दे विकार को निकार एक बार में,
मकार फेर दे किवार बने ढाल ध्यान की ।
रकार और मकार छत्र मुकुट के समान हैं,
समस्त वर्ण में निहार आंख से सुजान की ।
रकार और मकार के प्रसार ही की शक्ति है,
प्रधान रूप चन्द्रमा की, भानु की, कृशान की ।
अपार पारावार है रकार का, मकार का,
रकार रामचन्द्र हैं, मकार मातु जान की ॥

गाना

राम—(नेपथ्य में)

हे चन्द्र-लजावन मुखवाली, तुझ बिन सर्वत्र अँधेरा है ।
इस अन्धकार की दुनिया को, रौशन कर निज उजियाली से ॥

शङ्कर—(स्वगत) हैं ! यह अमृतवर्षा किधर से हो रही है !

गाना

राम—(नेपथ्य में)

जो फूल भूमि पर गिरता है, वह कब तक फूला रहता है ?
यह बात कोई जाकर पूछे, फुलबारी वाले माली से ॥

शङ्कर—(स्वगत) समझा, समझा—

वन में करने के लिए लीला विविध, ललाम ।
नराकार में आगए, निराकार श्रीराम ॥

गाना

राम—(नेपथ्य में)

तू किस हिंसक के वश में है, मालूम अगर यह हो जाए—
तो आकर अभी छुड़ालूं मैं, बलपूर्वक उस बलशाली से ॥

—०—

शङ्कर—जय हो, सच्चिदानन्द, आपकी जय हो ।

(प्रणाम करना)

सती—(स्वगत) हैं ! किसे सच्चिदानन्द कहा ? किसे इन्होंने प्रणाम किया ?

शङ्कर—(उसी आनन्द में)

हुआ हलाहल से नहीं यह सेवक बेचैन ।
मतवाला कर गए हैं आज उचटते नैन ॥

सती—(स्वगत) हैं ! यह क्या कह रहे हैं !

शङ्कर—(पहले ही की भांति)—

जिन नयनों में था नशा, उनमें आए नाथ ।
अब तुम भी बौरे बनो, इन बौरों के साथ ॥

सती—(स्वगत) सचमुच यह उन्मादी हो रहे हैं ।

शङ्कर—(उसी तरह)—

नयन क्षीर सागर बने, देने को विश्राम ।
पौढ़ो इनमें प्रेम से, नीलाम्बुज सम श्याम ॥

सती—(प्रकट) स्वामी, स्वामी, आपको क्या होगया है ?

शङ्कर—मैं भी अपने से आज यही पूछ रहा हूँ कि मुझे क्या हो गया है !

सती—अभी अभी आपने किसे प्रणाम किया? किसे नयनों में विश्राम दिया ?

शङ्कर—सती, उधर देखो। (सामने की ओर सङ्केत करके) मेरे इष्टदेव वे हैं-

दशरथनन्दन राम। लीलामय अभिराम ।
सीता-विरह-विभोर। गोदावरि की ओर ।

सती—(सामने देखकर) आश्चर्य ! यही आपके सच्चिदानन्द राम हैं ?

शङ्कर—हां ।

सती—जो अपनी स्त्री के विरह में विलाप कर रहे हैं ?

शङ्कर—हां, हाँ।

सती—समझ में नहीं आता, अपनी खोई हुई नारि की खोज में वन वन भटकने वाला और वन के पत्ते पत्ते से उसका पता पूछने वाला राम-सच्चिदानन्द नहीं हो सकता, योगियों के हृदय में रमने वाला महाप्रभु, इतना मन्द नहीं हो सकता।

शङ्कर—यही तो मेरे राम की विशेषता है। तुम क्या; तीनों लोकों के निवासी, चौदह भुवनों के वासी, इस चरित्र

पर चक्कर खायेंगे। आगे आगे देखना—लीलाधर की इसी लीला पर संसार के अनेकानेक प्राणी भरमायेंगे और निराकार साकार के झगड़े उठायेंगे :-

वह नट ही क्या, जो रंगभूमि पर पूरा नाट्य दिखाए नहीं।
दर्शकवृन्दों को-क्षण क्षण में, निज कौशल से भरमाए नहीं॥

सती—जी नहीं भरता।

शङ्कर—भर सकता ही नहीं, वाद विवाद से इस शङ्का का समाधान हो सकता ही नहीं।

वह दर्पण और है प्रतिबिम्ब जिस में उसका आता है।
कहीं हिलता हुआ पानी भी सूरज को दिखाता है?

सती—तो क्या आपके कहने पर ही विश्वास करके मौन हो जाऊँ?

शङ्कर—नहीं, परीक्षा करलो, स्वयँ जाँचकर अपना जी भरलो :-

जहाँ पर वस्तु सम्मुख है, वहाँ कैसा टटोना है?
प्रकट हो जायगा क्षणमें, प्रकट जो कुछ कि होना है॥
परीक्षा की कसौटी पर भली विधि जाँच कर आओ।
खरा है या कि खोटा है, मुलम्मा है कि सोना है॥

सती—यही आज्ञा है?

शङ्कर—हां—अब तो यही उचित जान पड़ता है। दक्ष की पुत्री सती की शङ्का-बातों से कौन निवारण करसकता है? तुम उधर हो आओ, मैं तबतक उस वृक्ष की छाया में बैठता हूँ।

विधि ने जो कुछ रचा है-होगा वही अवश्य ।
सुलझ न सकता तर्क से यह है राम-रहस्य ॥

(शङ्कर का जाना)

सती—(स्वगत) अच्छी बात है, परीक्षा ही लूंगी:—

दुखी नर की तरह जो फिर रहे हैं अश्रु बरसाते ।
है अचरज ! उनको ही योगेश हैं सर्वेश बतलाते ॥
जो हैं यह ब्रह्म-तो माया में चक्कर फिर हैं क्यों खाते ?
वचन पतिदेव के मेरी समझ में कुछ नहीं आते ॥
मनुज हैं-और हैं सर्वज्ञ भी; कैसी ये वाणी है ?
परीक्षा ही कहेगी-दूध कितना, कितना पानी है ॥

(जाना)

—o—

स्थान—जङ्गल ।

(भगवान् राम की गोद में जटायु अपनी अंतिम साँसे पूरी कर रहा है ।)

जटायु—

हा राम ! सिया को असुर एक—
हा राम ! लेगया है हर कर ।

हा राम ! छुड़ा न सका उनको—
हा राम ! शक्तिभर किया समर ॥
हा राम ! नहीं बोला जाता—
हा राम ! मुझे अब मरने दो ।
हा राम ! इधर ही दृष्टि रहे—
हा राम ! सुफल दृग करने दो ॥

राम—बहुत पीड़ा है पक्षीराज ?

जटायु—पीड़ा ? पीड़ा नहीं; पश्चात्ताप है:—

लज्जित हूं मैं राम, अवसर हाथों से गया !
कर न सका कुछ काम, यूं ही जग से चल दिया ॥

राम—पश्चात्ताप का नहीं, यह तो आनन्द का समय है कर्मवीर, तुमने परोपकार की वेदी पर-प्राणों की आहुति देकर-वह अमरयज्ञ किया है जिससे तुम सदैव के लिए अमर हो गए।

जटायु—कीर्ति ! अमरत्व ! मेरा प्रधान उद्देश्य नहीं था-मैंतो केवल माता को उस दुष्ट के हाथों से मुक्त करना चाहता था; परन्तु-परन्तु-ऐसा न कर सका ! पर कट गए ! छाती फट गई ! नाड़िओं से रुधिर बहने लगा और पृथ्वी पर गिर गया। जीत नहीं-मेरी हार होगई।

राम—नहीं, नहीं, परोपकार के देवता, तुम्हारी जीत ही हुई है। तुम्हारी गर्दन से कमर तक बहती हुई रक्तधारा-ऐसी मालूम होती है-मानो युद्ध की देवी ने तुम्हें विजयमाला पहनाई है। असुर से हारकर भी तुमने संसार के हृदय पर जय पाई है।

दे दी पर-उपकार में जिसने अपनी जान ।
उसका दोनों लोक में सदा हुआ है मान ॥

बताओ-बताओ, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? इस बलि का क्या बदला दूं ?

जटायु—बदला ? हुँ ! बदले का शब्द मुख से निकाल कर तुमने मेरा बोझ और बढ़ा दिया ! मैं न सेवा कराना चाहता हूँ न बदला चाहता हूँ, इच्छायें समाप्त हैं, शरीर में फैले हुए पाँचों प्राण-सिमट कर आँखों में आगए हैं, ऐसे समय-ऐसे समय-तुम्हें देख रहा हूँ-यह क्या कम सौभाग्य है ? जिस अछूत, घृणित और माँसाहारी जीव को कोई हाथ भी नहीं लगाता-राम ने उसे अपनी गोद में ले रक्खा है-मरने के पहले ही-मरने वाले को-बलि का बदला-इससे अच्छा और क्या मिल सकता है ?

आख़िरी भी साँस आजाये इसी आमोद में ।
प्राण काया से निकल जायें तुम्हारी गोद में ॥

हा ! राम ! हा ! राम ! हा ! राम !

(मृत्यु)

राम—गए ! परोपकार के अवतार, इतनी जल्दी चले गए ! हाय ! यह राम तुमसे ज्यादा बातें भी न कर सका । अपने मन की अभिलाषा भी पूरी न कर सका । ग्रीष्म के ताप से सूखी हुई धरती को-उपजाऊ बनाने के लिए-बादल का एक

टुकड़ा आया और सुधा जल से तृप्त कर गया। धरती ने बादल की इस कृपा का उसे क्या बदला दिया? सृष्टि का सम्पूर्ण कार्य चलता रहे-इसलिए-नित्य सवेरे सूरज प्रकाशित होता है, सारे दिन रहता है, और फिर सायंकाल को अस्त होजाता है,-सूरज के इस उपकार का सृष्टि उसे क्या प्रतिदान देती है? बड़ों का बड़प्पन यही है-कि वे बेलाग-निष्काम भाव से-परहित करें, करते रहें, और अन्त में उसी परहित में अपने शरीर को होम दें। तुम ऐसे ही महात्मा थे जटायुराज! पक्षी होकर तुमने मनुष्य जाति के सामने एक आदर्श रक्खा है। जानवर होकर तुमने आदमियों को रास्ता बताया है। (लक्ष्मण से) लक्ष्मण, लक्ष्मण, खड़े खड़े अश्रु बहाने का समय नहीं है। इस मृतक शरीर को नदी के तट पर ले चलो और काष्ठ सञ्चय करो। राम इस का-पिता के शव के समान दाह-संस्कार करेगा। (लक्ष्मण जटायु की लाश को उठाकर एक ओर को जाते हैं) जाओ प्यारे, उस लोक में जाओ, उस साकेत धाम में जाओ, जहाँ द्वेष नहीं है, हिंसा नहीं है, धोखा नहीं है, परस्त्री-हरण नहीं है, है-केवल शान्ति ही शान्ति, आनन्द ही आनन्द। उसी अविनाशी स्थान के पथिक हो, उसी सर्वोपरि पुरी के वासी हो :—

जगत् के इतिहास में यह मरना, नवीन एक पृष्ठ रख गया है।
तुम्हारे बलिदान पर प्रकृति का-हर एक परिमाणु कह रहा है—
कि आर्य्य माता को विश्व भर में इसीलिए तो विशेषता है।
यहाँ के पशु पक्षियों तलक में, दया है, परहित भरा हुआ है॥

पवित्र प्रख्याति आर्य्यवीरों की जब तलक भूमि पर रहेगी ।
समर में सर देके मरनेवाले, तुम्हारी कीरति अमर रहेगी ॥

गाना (१४)

सती—(नेपथ्य में)

कहाँ हो? सीता-पते, विकल है, विरह की मारी तुम्हारी सीता ।
विपिन में तुमको ही टेरती है, विपिन-विहारी तुम्हारी सीता ॥

राम—सीता ! सीता ! किसने कहा ?-किसने गाया ?-'विपिनविहारी तुम्हारी सीता !' अज्ञात कोकिल-कण्ठ, क्या सीता ! सीता ! कहकर-मुझे मेरी सीता की याद दिलाना चाहता है ? वह तो मेरे प्राणों में समाई हुई है, तू क्या कह रहा है ?

गाना

सती—(नेपथ्य में)

तुम्हारे सँग-झोंके जो पवन के, मिटाते थे ताप तन बदन के ।
उन्हीं से अब तप्त हो रही है, त्रितापहारी, तुम्हारी सीता ॥

राम—गाओ, गाओ, यही गाना गाओ, आकाश-तुम अपने बादलों के नाद में गाओ, सूर्य्य, तुम अपनी किरणों के तार पर गाओ, वृक्षो, तुम पवन के झोंकों पर गाओ, पक्षियो, तुम वृक्षों के झूलों पर गाओ, तुम सबके साथ साथ मैं भी गाऊँगा:-

गाना

तुम्हारे सँग-झोंके जो पवन के मिटाते थे ताप तन बदन के।
उन्हीं से अब तप्त होरही है, त्रितापहारी, तुम्हारी सीता ॥

सती—(नेपथ्य में)

गाना

न चाह है वस्त्रभूषणों की, न चाह है राजसी सुखों की।
दया की भिक्षा ही चाहती है, दयावतारी, तुम्हारी सीता ॥

राम—हैं! अब तो सर्वत्र यही गान व्याप्त हो रहा है! क्या प्रकृति सीता बनकर गा रही है? आगे बढ़कर देखूं तो!—(आगे बढ़कर और दूर से सती को देखकर) यह क्या! वही रूप! वही रँग! वैसे ही केश! वैसा ही वेश! क्या मेरी आँखें मुझे धोखा दे रही हैं! या मेरी आँखों ही को धोखा दिया जा रहा है! (आँखें मूँद कर, और दिव्यदृष्टि से देखकर) ओह! यह तो सती हैं, भगवान् शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी हैं, मेरी परीक्षा लेने आई हैं, मुझे छलने आई हैं। कुछ भी सही, इनके सीतावाले गान ने थोड़ी देर के लिए सीता ही से मेरा साक्षात् करादिया। अब यह नहीं तो मैं गाऊँगा।

गाना

न चाह है वस्त्र भूषणों की, न चाह है राजसी सुखों की।
दया की भिक्षा ही चाहती है–दयावतारी, तुम्हारी सीता॥

सती—(नेपथ्य में)

गाना

नहीं है यह कुछ दिनों का नाता, है जन्म जन्मान्तरों का नाता।
(प्रवेश करके)
जो तुम हो सीता के प्राणप्यारे ,तो प्राणप्यारी तुम्हारी सीता॥

—o—

राम—जय हो, जय हो, कैलासपति के मनमानस की हंसिनी–महादेवी सती–

सती—(स्वगत) हैं ! सती !

राम—यह दशरथनन्दन राम–आपको प्रणाम करता है।

सती –(कुछ हटकर, स्वगत) हैं ! इन्होंने तो मुझे पहचान लिया ! मुझे पहचान कर भी यह अपने लिए दशरथनन्दन राम ही कह रहे हैं ! अब क्या उत्तर दूं ?

राम—जगदम्बे, आप अकेली कैसे हैं ? भगवान् त्रिलोचन कहां हैं ?

अचानक दक्ष–पुत्री जब पधारी हैं कृपा कर के।
तो चंचल हो उठा हूँ मैं चरण छूने को शङ्कर के॥

छिपाया है उन्हें वट वृक्ष ने निश्चय घटा बनकर ।
प्रभा तो देखली–दर्शन नहीं पाए दिवाकर के ॥

सती—(स्वगत) निश्चय, यह तो सर्वज्ञ ही मालूम होते हैं ! मुझे पतिदेव के आगे लज्जित होना पड़ेगा ।

हुई वास्तव में नादानी न मानी बात ईश्वर की ।
नमक की कङ्करी लेने को आई थाह सागर की ॥

राम—क्या सोच रही हैं महामाये ? मौन क्यों हैं ? क्या मार्ग भूलकर इधर आगई हैं ? यह ध्यान नहीं रहा कि भगवान् भूतभावन वृक्ष के तले बैठे हुए हैं ?

सती—(स्वगत)

भूली नहीं हूं राम मैं इस वन के मार्ग को ।
पछता रही हूं भूल के जीवन के मार्ग को ॥

कुछ उत्तर न दूं, लौट चलूं। (कुछ चलकर) हैं, सर चकरा रहा है ! आँखों के आगे अन्धेरा सा आ रहा है ! माता पृथ्वी, मुझे कुछ क्षण के लिए विश्राम दो, नवीन शक्ति का दान दो।

(बैठ जाती हैं और आँखें मूंद लेती हैं)

राम—(स्वगत) समझा–समझा–भवपते, मायापते, सती की शङ्का का समाधान आप अपने वचनों से नहीं–मेरी चमत्कारिणी लीला से कराना चाहते हैं। अच्छा–जैसी आज्ञा; आज्ञाकारी ने तो सदा आज्ञा पालन की है और करेगा :—

(कुछ चलने के बाद)

ह्रास होगया ! (बैठ जाना, दृश्य बन्द हो जाना) तो क्या मैं भी पतिदेव के शब्दों में यही कहूं :—

जगत में आके भी छुपते नहीं जगवन्दन हैं ।
सकाम हो के भी निष्काम अवधनन्दन हैं ॥

(उठकर और कुछ चलकर) मैंने अभी अभी क्या देखा ?- विज्ञान या जादू-था केवल ईश्वरीय चमत्कार ! (दृश्य का फिर बदलना और भगवान् का विराट रूप दिखाई देना, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु आदि अनेक देवता भगवान् की स्तुति कर रहे हैं, सूर्य्य चन्द्र आदि-लोक लोकान्तर भगवान् के रूप में दिखाई देते हैं) हां, निश्चय, निश्चय, मैंने देख लिया, मैंने जान लिया, यथार्थ में यह ईश्वरीय चमत्कार है, (राम से) दशरथनन्दन राम, तुम्हें इस दक्ष पुत्री का प्रणाम ।

तुम्हारे इस रूप में महाप्रभु, अनेक जग जगमगा रहे हैं ।
तुम्हीं हो जल और थल में व्यापक, तुम्हीं में वे सब समा रहे हैं॥
असँख्य रवि, शशि, अनन्त तारे, प्रकाश तुम से ही पा रहे हैं ।
अनेक नारद, अनेक शारद, तुम्हारी महिमा को गा रहे हैं ॥
थकित हैं आँखें, चकित है प्रज्ञा, निहार कर भी न पार पाया ।
अपूर्व है यह तुम्हारा दर्शन, अपार है यह तुम्हारी माया ॥

(सिर झुका देती हैं)

—०—

स्थान–जंगल

शङ्कर—(प्रवेश करके) समाधि की गम्भीर शान्ति, और अनुभव के स्वच्छ प्रकाश में अभी अभी क्या देख रहा था ?- सती सीता बनकर राम की परीक्षा लेने गईं ! अनर्थ,- महान् अनर्थ । भोली नारी, तुमने इस छोटी सी शङ्का का समाधान करने के लिए-अपने आपको-इस से भी बड़ी और गहरी चिन्ता में डाल दिया ! सीता सदा मातृ-भाव से मेरे हृदय-मन्दिर में विराजती हैं, क्योंकि वे मेरे इष्टदेव भगवान् राम की अर्द्धाङ्गिनी हैं । जब तुमने माता सीता का रूप धारण कर लिया-तो मुझे तुमसे पत्नी-प्रेम करने का अधिकार ही नहीं रहा । मैं जानता हूँ कि तुम मेरे हृदय की शोभा और गृह का शृङ्गार हो, मेरे इस जीवन के मरुस्थल में सदा ही सुधा सिञ्चित करती रहती हो, तुमसे जो भाव अबतक रहा है-उसको बदलने से-निश्चय मेरे मन-भवन में अंधेरा होजायगा, जीवन

की कोमल कामनाओं का उद्यान उजड़ जायगा, प्राणों की तन्त्री का तार-मधुर झंकार की जगह-हाहाकार करने लगेगा। परन्तु-परन्तु,-यह भूतनाथ-यह नीलकण्ठ,-यह मुण्डमालधारी-सारे आघात सहन करके भी-अपने इष्टदेव की भक्ति को अपमानित नहीं होने देगा। मेरे सामने-इस समय-दो मार्ग हैं, एक ओर भगवान् राम की भक्ति-दूसरी 'ओर पत्नी का स्नेह। एक तरफ़ आत्मानन्द लहरें ले रहा है-दूसरी तरफ़ जीवन का रसास्वादन है। एक तरफ़ धर्म है दूसरी ओर गृह, एक तरफ़ निवृत्ति है दूसरी ओर प्रवृति। क्या करूं? किधर जाऊं! शशिधर, गङ्गाधर, अपने विचार पर दृढ़ रह। जीवन का रस फीका है, आत्मा के आनन्द में अमृत है। जीवन का सुख निस्सार है, आत्मा का सुख अविनाशी है। निर्णय होगया-निश्चय होगया-मैं पत्नी के स्नेह पर अपने प्रभु की भक्ति को भेंट नहीं करूँगा, प्रवृत्ति को निवृत्ति पर प्रधानता नहीं दूंगा। यही शिव सङ्कल्प है, यही सत्यं शिवं सुन्दरम् प्रतिज्ञा है। (सती का प्रवेश) आओ-आओ देवी! दक्षपुत्री!

सती—(स्वगत) हैं! देवी! दक्षपुत्री! प्रिये और प्राणेश्वरी की जगह यह नए सम्बोधन! विधाता, क्या होनहार है? अनेक अमङ्गल चिह्न दिखाई दे रहे हैं!

शङ्कर—कहो-मेरे राम की परीक्षा ले आई?

सती—(स्वगत) अब इनके प्रश्न का क्या उत्तर दूं:—

जो बोलूं झूंठ तो है पाप, सच बोलूं तो लज्जा है।
समस्या यह है जब सम्मुख तो चुप रहना ही अच्छा है॥

शङ्कर—सती ! सती ! बोलो, बोलो, मौन क्यों हो गईं ?

सती—(स्वगत) यह तो बात को बढ़ा रहे हैं ! जैसे खेल में जीतने वाला बालक हारे हुये बालक को चिढ़ाता है-उसी प्रकार मेरी हँसी उड़ा रहे हैं ! अब क्या करूं ?-कह दूं कि इस खेल में राम से हार कर आई हूं ? नहीं-नहीं, इसमें मेरी हेटी है, इस में दक्ष-पुत्री की पराजय है, मैं नारी हूँ और नारी के स्वभाव ही में गर्व है।-यह नहीं कहूंगी।

शङ्कर—सती ?-उत्तर नहीं देतीं ?

सती—महाराज-महाराज-महाराज, मैंने परीक्षा नहीं ली है।

शङ्कर—परीक्षा नहीं ली है-क्यों ?

सती—क्योंकि-उसकी आवश्यकता नहीं समझी।

शङ्कर—(स्वगत) अज्ञ नारी,

प्रथम अपराध तो यह था परीक्षा के लिए हट की।
फिर उस पर दूसरा यह दोष बातें हैं बनावट की॥
कटीले मार्ग पर पग रखके आगे बढ़ती जाती हो।
उलझती जा रही हो-जितना आंचल को बचाती हो॥

(प्रकट) तो-फिर कैसे विश्वास हुआ कि राम सच्चिदानन्द हैं ?

सती—आप सच्चिदानन्द कहते हैं-तो सच्चिदानन्द हैं, आपके वचनों पर मुझे विश्वास करना चाहिए ।

शिव—(स्वगत) सती, मेरे वचनों पर तुम्हें विश्वास नहीं हुआ, तुमने विश्वास को बहुत ही मँहगे भाव में मोल लिया है, सच है-मनुष्य कुछ खोकर ही पाता है, जब तक ठोकर नहीं खाता सीधे मार्ग पर नहीं आता है। (प्रकट) तो फिर-तुमने वहाँ जाकर क्या किया ?

सती—(स्वगत) एक झूठ को साधने के लिए न जाने कितने झूठ बोलने पड़ेंगे ! (प्रकट) आप ही की भांति प्रणाम किया और चली आई ।

शङ्कर—इतने से काम में बहुत समय लग गया ?

सती—क्षमा ! क्षमा ! प्राणेश्वर, क्षमा ! प्राणनाथ, क्षमा ! प्राणवल्लभ, क्षमा ! प्राणजीवन, क्षमा ! अब क्षमा के अतिरिक्त-और कुछ नहीं ।

शङ्कर—(स्वगत) ओह ! अब यह प्राणवल्लभ और प्राणजीवन के सम्बोधन प्राणों को प्रसन्नता नहीं दे रहे हैं-आघात पहुँचा रहे हैं। भगवान् राम के अनन्य उपासक, यही समय है-यही अवसर है-अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रह, सती की परीक्षा हो चुकी अब तेरी परीक्षा की बारी है, मोह की भावनाओं को कर्त्तव्य से बदल दे, प्रेम रख, पत्नी प्रेम छोड़

दे। बस ऐसा ही होगा, इसी तरह होगा, पृथ्वी, आकाश, पवन और दिशाओ, तुम साक्षी हो, यही होगा :-

सुनो सूक्ष्म संसार के देवताओ,
दुराधर्ष शिव ने कठिन व्रत लिया है।
टलें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र सारे-
टलूंगा न मैं उससे जो प्रण किया है ॥
सती अब न इस तन से है शिव की पत्नी,
न शिव आज से उसका प्यारा पिया है।
रहेगी वो माता ही होकर हृदय में,
हृदय ही से माता जिसे कह दिया है ॥

आकाशवाणी-जय जय महाव्रतधारी महादेव की जय।
चराचर जगत् में किसी ने अभी तक-
कभी ऐसा प्रण कर दिखाया नहीं है।
किसी भक्त ने भक्ति की भावना को
अभी इतना ऊंचा उठाया नहीं है ॥
प्रतिज्ञा तुम्हारी महा उग्र तप है-
कि है ज्ञान तो जिसमें-माया नहीं है।
जो संहार दे अपने जीवन के सुख को,
बली दृष्टि में ऐसा आया नहीं है ॥

सती—(स्वगत) हैं ? यह मैं ने क्या सुना ? महाराज ने क्या प्रण कर डाला ? (प्रकट) पतिदेव ! हृदयेश !

शङ्कर—देवी ! विदुषी !

सती—आकाशवाणी ने क्या कहा ?

शङ्कर—जो घटित हुआ।

सती—आपने क्या किया ?

शङ्कर—जो कर्त्तव्य था।

सती—अर्थात्–

शङ्कर—प्रेम के मधुर संगीत को–आदर और सम्मान का गुप्त-मंत्र बना लिया, वृक्ष के मध्य भाग में लिपटी हुई लता को–इतना उठाया कि उसे वृक्ष की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचा दिया।

सती—मैं कुछ नहीं समझी–स्पष्ट कीजिए।

शङ्कर—स्पष्ट ! स्पष्ट ही है। गले में पड़ी हुई माला के रत्न को–जो हृदय की शोभा बढ़ाता था–इतना आदर दिया कि सिर के मुकुट में लगा लिया।

सती—हृदय में तो प्रेम रहता है स्वामी ! जब हम किसी से प्रेम करते हैं तो हृदय से मिलते हैं।

शङ्कर—आदर और सम्मान का उससे भी ऊँचा स्थान है देवी ! वह मस्तक में रहता है; जब हम किसी का आदर और सम्मान करते हैं तो उसके आगे मस्तक झुका देते हैं।

सती—तो मेरा स्थान कहाँ है ?

शङ्कर—जहाँ आदर और सम्मान है।

सती—आदर और सम्मान है-प्रेम नहीं है।

शङ्कर—प्रेम ! प्रेम भी है, परन्तु-वासना और लालसा के साथ नहीं-भावना और कर्त्तव्य-पालन के साथ है।

सती—जीवननाथ, जीवनसर्वस्व, मैं मस्तक की वस्तु नहीं, मैं तो इन चरणों की रज हूं।

(चरण छूना चाहती हैं, शङ्कर हट जाते हैं)

शङ्कर—(सती को उठाकर) नहीं-नहीं, ऐसा न करो, मैं तुम्हारे प्रति इस से भी ज्यादा भक्ति-भाव रखता हूं। सीता माता का वेश बनाने वाली भगवती, इस शङ्कर का प्रणाम स्वीकार करो, (कुछ ठहरकर) चलो-देर हो रही है, जल्दी जल्दी कैलाम चलो। (शङ्कर का धीरे धीरे चलना)

सती—गया, सब कुछ गया-मकड़ी ने स्वयम जाला बनाया और उसमें फँस गई।

अपराधों ने सन्तापों ने-है सुखा दिया कोमल तन को।
हर श्वास पै अब अर्दास यही-लग जाय आग इस जीवन को॥

शङ्कर—सती, सती, पश्चात्ताप न करो, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है, अपराध है इस शरीर का जो दक्ष का अंश है, दक्ष के घर जन्म लेकर यह अपराध अनिवार्य्य था। अन्यथा तुम्हारा स्थान तो इस हृदय ही में नहीं, इस मस्तक ही में नहीं-इस महेश्वर के रोम रोम में है।

(आगे आगे भगवान् शङ्कर और उनके पीछे पीछे भगवती सती का जाना)

स्थान—दक्ष का महल।

(दक्ष और कविराय का बातें करते हुए आना)

—

दक्ष—देखते हो कविराय, जब से हमने सृष्टि-रचना के कार्य को अपने हाथ में लिया है-संसार को कितना मनोहर और उपयोगी बना दिया है। चौरासी लक्ष योनियों को क्रमानुसार उन्नत करके मनुष्य योनि तक पहुँचा दिया और फिर उस मनुष्य योनि को विज्ञान से अलंकृत कर दिया।

कविराय—हां महाराज, अब इतना और कर दीजिए कि मनुष्य अमर होजाय, जिससे संहार-शक्ति के देवता की आवश्यकता ही न रह जाय।

दक्ष—इसी लक्ष पर तो जारहे हैं। मनुष्य को विज्ञान-बल द्वारा अग्नि, जल और वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाली वाष्प के काम में लगाया—ताकि वह नित्य नए नए आविष्कार करे। विद्युत् की शक्ति से भूयान, जलयान, वायुयान, और आत्म-शक्ति से मंत्र, यंत्र, तंत्र निर्माण करे। इतना ही नहीं—और भी आगे बढ़ने का विचार है—

पा न सका विज्ञान भी जिसका अब तक तत्त्व।
योगक्रिया से मिलेगा, वह अलभ्य अमरत्त्व ॥

कविराय—समझ गया महाराज, हमारी यही उन्नति रुद्र की शक्ति को अवनत कर देगी।

दक्ष—रुद्र से तो हमें स्वाभाविक वैर है-इसीलिये होनेवाला वृहस्पति यज्ञ-हम रुद्रविहीन कर रहे हैं।

कविराय—यह भी आप उचित ही कर रहे हैं।

दक्ष—पिता श्री ब्रह्मा जी कहते हैं कि-रुद्र बिना यज्ञ नहीं होसकता। पूज्य श्री विष्णुजी की सम्मति है कि-रुद्र न होंगे तो यज्ञ अपूर्ण रह जायगा। परन्तु वे देखेंगे, लोक देखेगा, संपूर्ण देवसमाज देखेगा-कि रुद्रविहीन यज्ञ हो सकता है और पूर्ण होसकता है।

कविराय—कहने दीजिये महाराज ब्रह्माजी और विष्णुजी को-ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों की तो आपस में मिली भंगत है, वही बात है-"मैं तेरी पूजा कराऊँ तू मेरी पूजा करा"।

दक्ष—हम भूले नहीं हैं-भृगु मुनि के यज्ञ में हमार स्वागत के लिये समस्त देवमण्डल उठा, जामातृ चन्द्र ने चरण छूकर प्रणाम किया-परन्तु शङ्कर नामधारी उस औघड़ ने-उठकर नमस्कार तक नहीं किया।

कविराय—हाँ-यदि आपको नमन् कर लेते तो उनका क्या बिगड़ जाता।

दक्ष—इसीलिये हमें घोषणा करनी पड़ी-कि अब से यज्ञों में शिव को भाग नहीं दिया जायगा।

कविराय—यह भी उचित हीं हुआ राजाधिराज। जिस प्रकार भोजन न मिलने से मनुष्य निर्बल होजाता है-उसी प्रकार यज्ञ भाग न मिलने से देवता निर्बल होजाते हैं-फिर निर्बल शत्रु को परास्त कर देना क्या बड़ी बात है। इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई :-

वन की प्रचंड दावानल को आँधी तक नहीं मिटाती है।
निर्बल दीपक को साधारण झोंके से हवा बुझाती है॥

दक्ष—जब भी कोई नवीन रीति चलाई जाती है तो एक युद्ध किया जाता है, और उस युद्ध में प्रधान प्रधान व्यक्तियों ही को अग्रसर होना पड़ता है। इसीलिये यह शिवविहीन यज्ञ प्रजापति द्वारा होगा।

कविराय—महाराज, इस युद्ध में जब आप विजय प्राप्त कर लेंगे तो मैं एक कविता लिखूंगा, और ससार के समस्त अनाथ बालकों से उसका गान कराऊँगा।

दक्ष—अनाथ बालकों से क्यों ?

कविराय—इसलिये कि उनके गायन में भाव यह होगा कि—'जिस काल ने हम अनाथों के माता पिताओं को खाया है- उसी कालरूप रुद्र को परास्त करके प्रजापति दक्ष ने एकाधिपत्य पाया है।

दक्ष—हमें भरोसा है कि हम इस यज्ञ में अवश्य कृतकार्य होंगे—

यह सम्मान युद्ध है, इसमें खासकर हैं मात नहीं।

नारद—(आकर स्वगत)—

श्वसुर लड़े जामाता से–क्या यह हँसने की बात नहीं ?

दक्ष—(नारद को आया देखकर) आओ, नारद आओ–तुम ठीक अवसर पर आगये. शिवविहीन यज्ञ में देवताओं को आमन्त्रित करने का कार्य तुम्हीं को करना होगा।

नारद—महाराज, अब इस विरोध को और न बढ़ाइये-मेरी प्रार्थना है कि भगवान् शङ्कर को भी यज्ञ में बुलाइये।

दक्ष—वाह-शङ्कर को भी यज्ञ में बुलाइये ! यज्ञ में बुलाना क्या-मैं तो उसके अस्तित्त्व ही को मिटा देना चाहता हूं, जो शक्ति संसार के हर एक पदार्थ को नष्ट कर देती है उसी को नष्ट कर देना चाहता हूं।

नारद—तब तो मेरा अनुमान ठीक है-श्वशुर अपने जामाता का अनिष्ट चाहता है।

दक्ष—कैसा जामाता ? किसका जामाता ? यह तो सती की मूर्खता थी कि उसने राजकन्या होकर एक भिक्षुक को वरमाला पहना दी, सभ्य समाज में मेरी नाक कटवादी। मैं तो सती को भी उस दिन से छोड़ चुका हूं।

नारद—(स्वगत) मुझे भय है कि स्वयम्वर में तो नाक ही

कटी थी-बृहस्पति-यज्ञ में कहीं सिर न कट जाये। (प्रकट) महाराज, फिर विचारिये-हाथ की रेखायें नहीं मिटतीं।

दक्ष—हाथ की रेखायें? किसने बनाई हैं? मैंने, जब मैं बना सकता हूँ तो मिटा भी सकता हूं। बस-यह मेरी अन्तिम आज्ञा है-कि शिव को निमन्त्रण नहीं जायगा।

नारद—तो शिव भी तुम्हारे निमन्त्रण के भूखे नहीं हैं। अश्रद्धा का निमन्त्रण नीरस और फीका होता है :-

तभी आते हैं शिव, जब प्रेम से प्रेमी बुलाते हैं।
अगर है भाव तो—लस्सी से हो संतुष्ट जाते हैं॥
वो शिव ही हैं जो इतना प्रेम का सम्मान करते हैं।
गरल भी प्रेम से दो तो अमृत सम पान करते हैं॥

कविराय—कुछ भी हो, हमारे प्रभु को तो संहार-शक्ति ही का संहार कर देना है।

नारद—संहार-शक्ति का संहार? कैसे होजायगा? संसार के जिन तत्त्वों में रचना शक्ति है-उन्हीं के भीतर संहार-शक्ति भी छिपी हुई है। पृथ्वी के एक एक परमाणु में, जल की एक एक बूंद में, वायु के एक एक झोंके में, अग्नि की एक एक चिनगारी में-यदि रचना शक्ति है, पालन शक्ति है—तो संहार-शक्ति भी है। फिर-यह भी भूलने की बात नहीं है कि संहार-शक्ति ही से रचना शक्ति है—

पतझड़ में सूखे पत्ते जब वृक्षों से गिर जाते हैं।
तभी नवीन कोमलें आकर नूतन पल्लव आते हैं॥

मनुज-चेतना निशि को जब निद्रा में लय होजाती है।
अगले दिवस काम करने की शक्ति तभी तो आती है?

दक्ष—देखो जी, तुम्हें यज्ञ के निमन्त्रण का प्रबन्ध करना हो तो करो-नहीं तो बैठे बैठे तम्बूरा बजाओ! हमें इस विषय में न विवाद करना है, न अपना विचार बदलना है।

कविराय--इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई--

जो निज निश्चय नहीं बदलते-वही वीर व्रतधारी हैं।
वचन बदलने वाले प्राणी नर-शरीर में नारी हैं॥

नारद—प्रजापते, प्रजापते।

दक्ष—बस—प्रजापति की आज्ञा का पालन करो-यही तुम्हारा धर्म है। अपने भाई की हट पूरी होने दो—यही तुम्हारा कर्त्तव्य है --

मन में जो बल पड़े हैं-वचनों से कम न होंगे।
शङ्कर के साथ अपने व्यवहार सम न होंगे॥
दो में से एक ही अब इस सृष्टि में रहेगा—
हम होंगे-वह न होगा, वह होगा-हम न होंगे॥

(दक्ष का कविराय सहित जाना)

नारद—(स्वगत) बड़े बूढ़ों ने ठीक ही कहा है :—

औरों के घर आग लगे तो सारी बस्ती धाती है।
अपने घर की आग किसी से नहीं बुझाई जाती है॥

(दूसरी ओर से महारानी प्रसूति का प्रवेश)

प्रसूति—देवर्षे।

नारद—पधारिये महारानी, प्रजापति अपनी हठ नहीं छोड़ते।

प्रसूति—शिव-विहीन ही यज्ञ करेंगे ?

नारद—हाँ।

प्रसूति—सती को भी नहीं बुलायगे ?

नारद—हाँ-हाँ।

प्रसूति—तुम्हारा समझाना भी निष्फल हुआ ?

नारद—हाँ-हाँ-हाँ।

प्रसूति—कैसा अन्धेर है ! तीनो लोकों से ऋषि, महर्षि, देवता, दिग्पाल और महिपाल आयेंगे, सारी कन्यायें आयेंगी-परन्तु सती और शङ्कर ही नहीं आयेंगे। प्रजापति यह सहन कर सकते हैं, देवर्षि यह सहन कर सकते हैं—रानी प्रसूति सहन नहीं कर सकती। सूरज निकलता है और छुप जाता है, रात्रि आती है और चली जाती है, मैं रोज गिनती हूँ कि सती के आने में इतने दिन और रह गये, पर आज-आज-मेरी छाती के किवाड़ टूट गये, हृदय के महल की दीवार ढह गई। अब एक ही उपचार रह गया है—अपना अधिकार काम में लाऊँ, अर्द्धाङ्गिनि के नाते-महाराज की हठ पर विजय पाऊं। (कुछ सोचकर) परन्तु नहीं—यह भी असम्भव है। बेचारी आर्य नारी कहने ही के लिये अर्द्धाङ्गिनि है। बर्ताव में एक सेविका के समान है- उसको अधिकार ही नहीं कि वह पति की आज्ञाओं से युद्ध करे, पति की इच्छाओं के विरुद्ध आन्दोलन करे। तब ? तब ? इस नौका का पार लगना कठिन ही है।

नारद—अब तो एक ही सहारा है।

प्रसूति—वह क्या ?

नारद—मैं स्वयं कैलास जाऊँ-सती के साथ साथ शिव को भी निमन्त्रण दे आऊँ—उनसे कहूँ कि प्रजापति ने नाता तोड़ दिया है-परन्तु माता प्रसूति ने और मैंने नहीं तोड़ा है।

प्रसूति—डूबते हुये को इतना सहारा भी बहुत है।

नारद—(स्वगत) इस कनखल के नाटक में मेरा चरित्र भी विचित्र है। एक दिन सती के अनुरोध पर शिव के समीप श्मशान में गया था-आज प्रसूति का दुःख देखकर कैलास जारहा हूं।

(प्रस्थान)

प्रसूति—(स्वगत)

परिवर्तन है सदा सृष्टि में चंचल है सारा संसार।
किन्तु एक ही वस्तु अटल है और वह है-माता का प्यार॥

गाना (१५)

रचा क्यों माता को कर्त्तार ?
रच कर क्यों भर दिया हृदय में ममता मोह अपार ?
निज सुख की बलि देती है मां, बच्चों के सुख-हेतु।
संतत बांधा करती है, सन्तति-रक्षा का सेतु॥
चाहती नहीं कभी प्रतिकार।

जल-निधि को निज मर्यादा का रहता सदा विचार ।
लेकिन मातृ-हृदय रखता है कभी न परिमित प्यार ॥
असीमित है इसका विस्तार ।

—०—

(जाना)

स्थान—कैलास

(भगवान् शङ्कर समाधि लगाये हुये बैठे हैं, आकाश से देव-कन्यायें गान कर रही हैं और फूल बरसा रही हैं) ·

गाना (१६)

देवकन्यायें—

नमामि शम्भुशंकरम्, नमामि सृष्टिकारणम् ।
अनन्तशान्तिरूपिणम्, जगत्पतिम् कृपामयम् ॥
प्रचण्डपापखण्डनम्, विशुद्धज्ञानमण्डनम् ।
जटाकलापशोभितम्, भुजङ्गभस्मभूषितम् ॥
अनङ्गदर्पभञ्जनम्, कृपानिधिम् त्रिलोचनम् ।
त्वदीय नाम अक्षरम्, जपन्ति ये निरन्तरम् ॥
विहाय सर्व संशयम्, लभन्ति ते परं पदम् ॥

—०—

(देवकन्याओं का अन्तर्द्धान होना, सती का आना)

सती—(स्वगत) अभी तक उसी तरह समाधि लगी हुई है। मेरे इष्ट देव, अपने इष्टदेव के ध्यान में निमग्न हैं। चान्द्रायण व्रत रखनेवाली नारियाँ चन्द्रोदय की प्रतीक्षा में रहती हैं; जब दर्शन हो जाते हैं तो सुख पाती हैं, हर्ष और आनन्द मनाती हैं। परन्तु मैं ऐसी दीना नारी हूँ कि मेरे चन्द्रमा मेरी आँखों के सामने उपस्थित हैं फिर भी मेरा मनचकोर नहीं हर्षाता। सारा कैलास इस आलोक से आलोकित हो रहा है-किन्तु मेरे ही हृदय का अन्धकार नहीं जाता। इसका कारण क्या है? वही जो भगवान बहुत दिन पहले अपने इन शब्दों में बतला चुके हैं "सीतामाता का वेश बनाने वाली भगवती, इस शंकर का प्रणाम स्वीकार करो!" तभी से, हाँ तभी से-स्वामी ने मुझ से पत्नी-प्रेम का सम्बन्ध त्याग दिया है। संयोग है, परन्तु वियोग से अधिक दुःख दे रहा है। हा! कैसा परिवर्तन है! भ्रमर फूल के पास है किन्तु उसकी सुवास नहीं पाता। कृषक की खेती के ऊपर बादल मँडला रहा है परन्तु जल नहीं बरसाता। आह! वसन्त ऋतु है, फूलों की सुगन्धि से सारा वन महक रहा है, वृक्षों की डालियां हवा के झोकों से लहरा रही हैं, कैलास की चोटी पर जमा हुआ बरफ-ऐसा प्रतीत होता है मानों पर्वतों का देवता उज्ज्वल-स्वेत-चादर ताने सो रहा है-यह सब क्या है? एक पति-परित्यक्ता नारी के लिये सुख का मनोहर दृश्य नहीं; दुःख का भयानक दण्ड है। मनुष्य अपने अज्ञान से यदि एक बार भी कोई अकर्म

कर बैठता है-तो फिर जीवन भर पछताता है, भीतर ही भीतर रोता और चिल्लाता है, यही प्रकृति का न्याय है। इस न्याय कृपाण की धार बहुत पैनी है, इस न्यायाधीश का हाथ बड़ा कठोर है :-

हे दैव, कर्म्मफल यह कब तक समाप्त होगा ?
कब तक मुझे वो पहला सौभाग्य प्राप्त होगा ?
उर में मेरे चिता सी कब तक जला करेगी ?
जीते जी यह वियोगिनि-कब तक मरा करेगी ?

शंकर—(समाधि से जाग कर) ओ३म्, ओ३म्।

सती—(स्वगत) जागे, जागे, पशुपति जागे, भवपति जागे।

(आगे बढ़ती हैं)

शंकर- आओ आओ—सती, (वहीं पड़े हुये एक आसन को सामने डालकर) विराजो।

सती- (स्वगत) जिसका वामाङ्ग में निवास था उसके लिये अब सामने आसन मिला है।

शङ्कर—देवी,—

यही मैंने विचारा है, यही अनुभव में आया है।
है केवल हरिभजन ही सत्य, जग सुपने की माया है॥

सती—प्राणेश्वर, जग चाहे माया हो, संसार चाहे स्वप्न हो, परन्तु मेरे लिये-इन चरणों की पूजा—सत्य से भी महान् सत्य है! जिस प्रकार गगन—मण्डल में अनन्त तारिकायें सूर्य भगवान् के चारों ओर घूमा करती हैं, उसी प्रकार भूमण्डल

में मेरी अनेक कामनायें आप ही के दिव्य रूप की परिक्रमा किया करती हैं :-

नृपति को है प्रजा प्यारी, कृपण को अपना धन प्यारा ।
तपस्वी को है तप और भक्त को भगवन् भजन प्यारा ।
यती को योग प्यारा है, मनस्वी को मनन प्यारा ।
अमृत है चन्द्रमा को, दामिनी को श्याम घन प्यारा ॥
हृदय के देवता, लेकिन, मुझे तो आप प्यारे हैं ।
मेरे इस लोक और परलोक दोनों के सहारे हैं ॥

शङ्कर—ओम् तत्सन्, ओम तत्सन्, (आनन्द में कुछ कुछ आंखें मूंदते हैं)

सती—(स्वगत) यह क्या-फिर नैन मुँदे जारहे हैं ?-फिर भगवान् समाधि लगायेंगे ? (खड़ी होकर और समीप जाकर, प्रकट) देखिए-नाथ, वह सामने-नदी के किनारे चकवे चकवी का जोड़ा कैसा प्रेम प्रदर्शित कर रहा है ?

शङ्कर—(आँखें खोलकर) देवी धूप और छाया के समान सुख के साथ दुःख और मिलने के साथ विछोह लगा हुआ है-यह पत्ती-जो दिन में संयोग का सुख उठा रहे हैं, रात्रि को बिछुड़ कर वियोग का दुःख पायेंगे ।

यही जान ज्ञानी जन माया में मन नहीं लगाते हैं ।
कड़वाहट है इस मिठास में, क्षणभङ्गर यह नाते हैं ॥

सती—(स्वगत) वही वैराग्य मन में समाया हुआ है,

आशावादिनी सती, अब तुमको क्या आशा है ? (प्रकट) भूतेश !

शङ्कर--हाँ-हाँ।

सती--यह नदी जो चोट खाई हुई नागिनी के समान अकुलाती-बलखाती-शोर मचाती-पहाड़ों की छाती को चीरती हुई-अत्यन्त वेग के साथ बही जारही है-कहाँ जाकर विश्राम लेगी ?

शंकर--समुद्र की गोद मे।'

सती--समुद्र की गोद में जाकर तो अपूर्णता नहीं रहेगी ? विकलता मिट जायगी ?

शंकर--हां-समुद्र में मिलकर नदी भी समुद्र ही कहलायगी।

सती--निश्चय यही है ?

शङ्कर--इसमें सन्देह ही क्या है।

सती--परन्तु मैं देख रही हूँ, अनुभव कर रही हूं, कि कभी कभी समुद्र में मिलकर भी नदी शान्ति नहीं पाती, उसकी व्याकुलता नहीं जाती।

शङ्कर--यह तो असम्भव सी बात है।

सती--नहीं-नहीं, दयासागर यही प्रत्यक्ष हो रहा है।

शङ्कर--कहाँ ?

सती--इसी कैलास पर्वत पर।

शङ्कर-- कौन सी है वह नदी ?

सती—(अपने आपको बताकर) यह है वह नदी, जिसने अपने जीवन में शयन और विश्राम त्याग कर अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होकर अपने आपको (शङ्कर की ओर सङ्केत करके) महासागर में लीन कर दिया है। परन्तु–वहां पहुँच कर भी–

शङ्कर--(खड़े होकर) क्या नहीं मिला ? सुख नहीं मिला ? शान्ति नहीं मिली ? यदि नहीं मिली–तो मुझे बताओ ! मैं अपने प्राणों को मूल्य में देकर भी तुम्हारे लिए वह वस्तुयें लाने को तैयार हूं। सती, क्या तुम्हें यह सोच है कि तुम्हारे पहनने के लिए बहुमूल्य आभूषण नहीं हैं ? क्या तुम सर्वश्रेष्ठ वस्त्रों से अपने शरीर को सजाना चाहती हो ? या–तुम्हें यह पछतावा है कि तुम्हारे पिता दक्ष के रत्न जटित प्रासादों के समान आँखों में चकाचौंध उत्पन्न करने वाले भवन इस कैलास पर नहीं ह ? बताओ–सती बताओ–क्या चाहती हो ?

जो तुम चाहो तो यह पाषाण–घर कर स्वर्ण का घर दूँ।
जो तुम चाहो तो इस आँचल को मणि मुक्ताओं से भर दूँ॥
जो तुम चाहो तो जग क्या, स्वर्ग तक के दिव्य अम्बर दूँ।
जो तुम चाहो अमृत–रस चन्द्रमण्डल से मँगाकर दूँ॥
कहो तो सृष्टि–चालन हो तुम्हारे ही इशारे पर ;
तअज्जुब है–भिखारिनि तुम हो विश्वेश्वर के द्वारे पर॥

सती—स्वामी, समुद्र के अथाह जल से और भादों की लगातार भरन से प्यासी पपीही की प्यास नहीं बुझती, वह

चाहती है–स्वाति नक्षत्र में बरसने वाले बादल के एक टुकड़े को और उस टुकड़े से गिरी हुई जल की बूंद को।

शङ्कर—अर्थात् ?

सती—पत्नी स्वर्ण का कैलास नहीं चाहती, त्रैलोक्य का राज्य नहीं चाहती वह चाहती है पति-प्रेम, केवल पति-प्रेम। यह नहीं है तो उसका जीवन सूखा हुआ काष्ठ है, उसका सुन्दर शरीर जलती हुई चिता है :—.

सुन्दर आभूषण वस्त्रों से नर्तकी सजायी जाती है।
पत्नी, पति के मन–मुक्ता को पाकर मन में हर्षाती है॥
पति–प्रेम ही इस भूमण्डल पर सच्चा शृंगार है नारी का।
है स्वर्ग यहीं–पति के मनमें यदि पूर्ण प्यार है नारी का॥

शङ्कर—ओह–मैं हार गया, यही एक वस्तु सती के लिए मेरे पास नहीं है।

सती—यह क्या कह रहे हैं विश्वनाथ ? समुद्र के पास जल नहीं रहा ? सूर्य्य के पास तेज नहीं रहा ? जो प्रेम के देवता हैं, प्रेम के प्रचारक हैं जिनके भण्डार से चराचर जगत् प्रेमामृत ले रहा है, उन्हीं के पास प्रेम का अभाव है ?

शंकर—प्रेम का अभाव ? नहीं–है। वह तो और भी अथाह हो गया है। अन्तर इतना ही है कि पत्नी-प्रेम अब सती-भक्ति के रूप में परिणत होगया है, यह अनन्य प्रेमी कुछ काल से तुम्हारा अनन्य भक्त होगया है, रसिक नहीं रहा है-

सेवक होगया है। सुनो! सती सुनो-प्रेम के अनेक रूप हैं, कहीं यह प्रेम पुत्र बनकर माता पिता की गोद में खेलता है कहीं प्रिय मित्र बनकर संकट के समय सहायता करता है। कहीं सेवक होकर सेवा में लीन है, तो कहीं शिष्य होकर गुरू की आज्ञा के आधीन है। आओ सती, आओ, तुम भी मेरे साथ साथ अब इसी ऊँचे स्थान पर आओ, पति-प्रेम की भावना को सच्चिदानन्द के प्रेम की आराधना में विलीन करदो।

सती—परन्तु मेरे लिये तो पति-प्रेम ही सच्चिदानन्द की परिपूर्ण आराधना है। प्रियतम, प्राणनाथ, प्राणजीवन, प्राणसर्वस्व, मुझे फिर एक बार प्रेयसी, प्राणेश्वरी, कह कर पुकार लो, मैं केवल इतना ही चाहती हूं, मैं केवल इतना ही माँगती हूं।

शङ्कर—देवी, बार बार मत कहलाओ, पत्नी-प्रेम के सिवाय-मेरे पास-तुम्हारे लिए-और सब कुछ है।

सती—परन्तु, मेरे लिए तो पति-प्रेम के सिवाय वह सब कुछ-कुछ भी नहीं है:-

कठिन व्रत इस तरह जब प्राणवल्लभ तुमने धारा है।
कहो इस आश्रिता के वास्ते फिर क्या सहारा है?
मैं डरती हूँ निराशा मृत्यु का कारण न बन जाये।
विरह का दुःख दासी के लिए मारण न बन जाये॥

(स्वगत)—यही, अब यही होगा, परित्यक्ता के लिए मृत्यु की समाधि ही शान्ति-धाम है, जगन्नियन्ता सर्वव्यापी

परमात्मा, आप से अब यही विनय है कि जब इस शरीर से अपने पति को नहीं प्राप्त कर सकती तो इसके रहने की भी क्या आवश्यकता है ? तोड़दो भगवन्, इस मिट्टी के घरौंदे को तोड़दो, इस काया के पिंजड़े को नष्ट करदो, इसे धूल में मिलादो, इसे आग में जला दो :-

जी रही हूँ किसलिए मैं भाग्य की फूटी हुई ?
बज नहीं सकती कभी भी बांसुरी टूटी हुई ॥
सिंधु में संसार के कब तक झकोले खायगी ?
नाव जीवन की मेरे मल्लाह से छूटी हुई ॥

(कुछ ठहर कर) हैं ! कौन बोला ? मेरे हृदय के सब से गहरे भाग में बैठा हुआ कौन पुकार उठा ? सती, तू गिर गई है, गिरती ही जा रही है । पतिदेव को उनके प्रतिज्ञा-पथ से हटा रही है, आत्मघात की बात सोचकर इन्हें और कष्ट पहुँचाने जारही है, क्या यही नारी-धर्म है ? क्या यही पति-प्रेम है ? इस कायरता पर फटकार है, इस दुर्बलता पर धिक्कार है। निश्चय, निश्चय होगया, मैं यह भी न करूंगी । (प्रकट, शङ्कर से) नीलकण्ठ ! आशुतोष ! आपने मुझे ठीक मार्ग दिखाया है, मैं इस कैलासधाम में अब उसी मार्ग पर चलूंगी । पत्नी बनकर नहीं तो सेविका बनकर सेवा किया करूंगी । आप के स्नान के लिए जल लाया करूंगी, पूजा के लिए फूल लाया करूंगी, भोजन के लिए फल लाया करूंगी । इस प्रकार इस नारी-शरीर को-

जो प्रेमसागर से दूर होगया है, सेवा के मानसरोवर में पवित्र बनाया करूंगी :—

बरफ़ जिस तरह गल गल कर पर्वत को शीतल करता है ।
पवन जिस तरह चल चलकर सन्ताप विश्व का हरता है ॥
धर्म्म पुजारी का जैसे है-ठाकुर की पूजा करना ।
यूं ही दासी का व्रत होगा-स्वामी की सेवा करना ॥

(सती का जाना)

शङ्कर—दिशाओं का अन्त हाथ आ सकता है -परन्तु सती के हृदय का पार पाना कठिन है । तपस्विनी. तुमने पश्चात्ताप की अग्नि से अपने लिए शुद्ध कर लिया, परन्तु-शङ्कर प्रतिज्ञा के शिखर पर इतना ऊंचा चढ़ गया है कि अब दूसरा ही जन्म धारण करके तुम उसे प्राप्त कर सकती हो। (ऊपर को देखकर) ओह, तीसरा प्रहर हो गया ! सूर्य्य अस्त होने वाले हैं ! प्रकृति का कैसा नियम है-प्रातःकाल के समय बाल रवि अपनी सुनहरी किरणों से प्राची दिशा में दर्शन देता है, दोपहर को वही प्रचण्ड मार्त्तण्ड बन जाता है, और सायंकाल को तेजहीन होकर अस्ताचल की ओर जाता हुआ दृष्टिगोचर होता है। मनुष्य-जीवन की भी यही गति है। बालकपन के खेल कूद, जवानी के संघर्ष, और बुढ़ापे के अनुभव सब मृत्यु के अंधेरे में विलीन होजाते हैं । यही मेरे राम का त्रिअङ्की नाटक है, जो नित्य होता रहता है और नित्य होता रहेगा ।

सती—(खप्पर में दूध लाकर) नन्दीश्वर, समाधि का श्रम दूर करने के लिए गो-दुग्ध पान कीजिए।

शङ्कर--(दूध लेकर) ओम् (शङ्कर दूध पीते हैं उधर आकाश पर विमानों द्वारा देवगण जाते हुए दिखाई देते हैं)

सती--हैं ! यह मैं क्या देख रही हूं ? देवतागण अपने अपने विमानों पर कहाँ जा रहे हैं ?

नारद--(आकर) जय, जय, देवाधिदेव महादेव की जय।

शकर--(दूध का खप्पर रखकर) कौन ? देवर्षे ? पधारिए, पधारिए अचानक दर्शन देने का कारण ?

नारद--एक निवेदन, निमन्त्रण। भृगुमुनि के आश्रम में उत्पन्न होनेवाला दक्ष भाई का क्रोध-अब इस सीमा को पहुँच गया है कि आपकी अनुपस्थिति में बृहस्पति-यज्ञ का आयोजन होरहा है।

शंकर- तो यह उनकी इच्छा है। मुझे इसमें न कुछ दुःख है, न कोई उलहना है।

नारद--दुःख ? आपको नहीं है-मुझे है, महारानी प्रसूति को है, समस्त कनखल और सम्पूर्ण देवमण्डल को है। इसीलिये उन सब मौन प्रेमियों की ओर से--मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस यज्ञ में पधारें,-दक्ष की ओर नहीं-हम सब की ओर निहारें।

सती--(स्वगत) ओहो ! अब समझी ! तो यह सम्पूर्ण देवतागण अपने अपने विमानों पर मेरे पिता जी के ही यहां जा रहे हैं।

शंकर--मुनिवर प्रजापति ने यज्ञों में मेरा भाग बन्द कर दिया है, अब मैं सब जगह आने जाने से छूट गया। स्वतन्त्रता

के साथ श्मशानों में घूमूंगा और कर्त्तव्य पालन-करता हुआ अपने राम का स्मरण करूँगा:-

सदाशिव तो सदा संसार से बेलाग रहता है।
किसी से द्वेष रहता है, न इसको राग रहता है॥
सरोवर में पृथक् जल से कमलवन् यह कपाली है।
भरा भूतल की नाईं तो-गगन की भाँति खाली है॥

नारद--यह आप सच कह रहे हैं महेश्वर, परन्तु मेरा हृदय यही चाहता है कि इस उत्सव में आप अवश्य सम्मिलित हों- भूतकाल के वैर-भाव भविष्य के लिये प्रीति में परिणत हों।

विद्वेष का छाला, मधु-रस का प्याला बन जायें तो अच्छा।
बिखरे दानों की लड़ जुड़कर माला बन जाये तो अच्छा॥

शंकर—वीणाधारी, इसमें सन्देह नहीं कि आपके भाव बड़े उच्च हैं, परन्तु प्रकृति में कभी ऐसा हुआ है न होगा। अमृत और विष एक जगह नहीं रहेंगे, दिन और रात का साथ हो ही नहीं सकेगा। प्रजापति अपने विचार में शिवविहीन यज्ञ द्वारा-शिव का अपमान करते हैं, परन्तु शिव के विचार में-मान और अपमान है ही नहीं :—

जिन्हें है शान प्यारी है उन्हीं को शान का खटका।
निरभिमानी को होता ही नहीं अपमान का खटका॥
है जिसका आदि उसको ही तो है अवसान का खटका।
स्वयं जो काल है-उसको हो किससे जान का खटका?
मिलन का त्याग में लय, राग का वैराग्य में लय है।
अलग जो राग और वैराग्य से है वह ही निर्भय है॥

नारद—तो क्या किसी प्रकार भी आप वहाँ न चलेंगे ?

शंकर—नहीं, यह अभिमान नहीं स्वाभिमान है:-

वहाँ है रत्न कञ्चन तो-यहाँ सन्तोष का धन है।
भुवन उनका है विस्तृत तो-असीमित अपना कानन है॥
प्रजाजन पर है उनका-अपने मन पर मेरा शासन है।
वहां माया का बन्धन है-यहां स्वच्छन्द जीवन है॥
मैं भिक्षुक हूँ-लिया करता हूँ पर-सम्मान से भिक्षा।
न लूंगा स्वर्ण के प्याले में भी अपमान से भिक्षा॥

नारद—(स्वगत) प्रजापति बुलायेंगे नहीं, और शिव बिना बुलाये जायेंगे नहीं ! देखिये-क्या परिणाम होता है। (सती से) महेश्वर नहीं स्वीकार करते तो यह निमत्रण माहेश्वरी स्वीकार करे, दक्षिणांग उपराम है तो-वामाङ्ग उपकार करे ।

सती--मैं भी क्षमा चाहती हूँ, पतिदेव की आज्ञा बिना एक डग भी नहीं उठा सकती, कनखल क्या कहीं भी नहीं जासकती। कन्या-विवाह होजाने के बाद-पत्नी कहलाती है, फिर माता पिता की वस्तु नहीं रहती, पति की सम्पत्ति हो जाती है।

नारद—(स्वगत) ओह ! ऐसा मालूम होता है कि देवी का उत्तर भी देवता ही के शब्दों की प्रतिध्वनि है,-धन्य दम्पतिवर। (प्रकट) अच्छा-जैसी इच्छा !- मुझे अब आज्ञा ? (हाथ जोड़कर विदा होते हैं-जाते जाते स्वगत) मेरा तो इस नाटक के प्रारम्भ ही में अनुमान था कि दक्ष को प्रजापति

बनाने में भूल हुई। मेरे उद्योग से भी यह उलझन नहीं सुलझी। अब तो विधाता का विधान ही संपूर्ण झगड़ा मिटायेगा. और देवमण्डल को शान्ति पहुँचायेगा।

बातों मे मिटना नहीं कभी भाग्य का लेख।
होनी होकर रहेगी-इसमें मीन न मेख ॥
(जाना)

सती—(शङ्कर से) हृदयेश, कुछ हृदय की कहूँ ?

शङ्कर—अवश्य।

सती—देवर्षि के निमन्त्रण पर मेरा जो उत्तर था-इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं-वह उचित ही था, परन्तु-

शङ्कर—कहो, कहो।

सती—मायके में होनेवाले महोत्सव का समाचार सुनकर प्रत्येक पुत्री के मन में-

शङ्कर—हाँ हाँ-

सती—उसमें सम्मिलित होने की उमंग होती ही है।

शङ्कर—यह तो स्वाभाविक ही है।

सती - तो फिर दासी की प्रार्थना है कि आप आज्ञा दे दीजिए जिससे यह आज्ञाकारिणी उस यज्ञ में जाये-माता, पिता और बहनों के दर्शनों का लाभ उठाये।

शङ्कर—

वहाँ तुमसे करेगा बात भी कोई नहीं हित की।
अपरिचित सी रहेंगी चितवनें प्रत्येक परिचित की ॥

कठिन तल्वार भी ऐसा नहीं आघात करती है ।
कि जैसी चोट एक अपमान वाली बात करती है ॥

सती—तो क्या पिता अपनी पुत्री का तिरस्कार करेगा ?

शङ्कर—करेगा–अहंकारी होने के कारण ।

सती—माता भी विवश होजायगी ?

शङ्कर—होजायगी–पराधीन नारी होने के कारण ।

सती—बहनें भी प्रेम से नहीं मिलेंगी ?

शङ्कर—नहीं मिलेंगी–मेरे भिखारी होने के कारण ।

सती—सम्पूर्ण देवसमाज भी मौन रहेगा ?

शङ्कर—रहेगा–यज्ञ की मर्यादा प्यारी होने के कारण ।

सती तब तो मुझे अवश्य जाने दीजिये ।

शङ्कर—किसलिये ?

सती—पिता की मङ्गल–कामना के लिए, समस्त संसार की हित–साधना के लिए। जहाँ महेश्वर नहीं हैं, महेश्वर का सम्मान नहीं है, वहाँ घोर अमङ्गल की आशङ्का है, बहुत बड़े अकल्याण की सम्भावना है। बृहस्पति जैसे महत् यज्ञ में सम्पूर्ण देवताओं का पूजन किया जायगा–और आपका भाग नहीं होगा ! क्या विश्व की महाशक्ति–महिमामयी विराट् प्रकृति–यह अपमान सहन कर लेगी ? नहीं, कदापि नहीं । अग्निकुण्ड में आहुति ग्रहण करनेवाला अग्निदेव-कुपित होकर प्रचण्ड ज्वालामुखी बन जायगा, ग्रह और उपग्रह आपुस में टकरा जायेंगे। इसलिए जाने दीजिए। विश्वेश्वर, विश्वनाथ, समस्त

विश्व की भलाई के लिए-मुझे जाने दीजिए। मैं वहां पूछूंगी-यह यज्ञ वेद-विहित होरहा है ? पिता से कहूंगी-देवाधिदेव को भाग दिए बिना अनुष्ठान पूरा होजायगा ?

शङ्कर—तुम भूल रही हो सती। जिस मदान्ध दक्ष ने ब्रह्माजी की नहीं सुनी, विष्णु जी की नहीं सुनी, वह तुम्हारी बात पर कैसे ध्यान देगा ? बादलों की गड़गड़ाहट में मैना की बोली कौन सुनेगा ? सहन कर, अशक्त अबला, इस हिमालय-निवासी की तरह-तू भी पाषाण-हृदय होकर यह अपमान सहन कर।

सती—नहीं, मुझसे सहन नहीं होगा। मैं अशक्त अबला भी नहीं हूँ; भगवान् महाकाल की शक्ति हूं जिसके सङ्केत पर प्रलय नृत्य करता है।

(शिव को अपनी चारों ओर नवदुर्गा दिखाई देती हैं)

शिव—हैं ! शैलपुत्री ! ब्रह्मचारिणी ! चन्द्रघण्टा ! कूष्माण्डा ! स्कन्दमाता ! कात्यायिनी ! कालरात्रि ! महागौरी ! सिद्धिदात्री ! अब नहीं रोकूंगा। वीरभद्र, वीरभद्र, (वीरभद्र का आना) तुम साथ जाओगे।

—०—
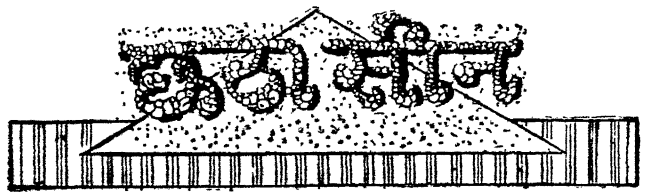
स्थान—कविराय की बैठक के बाहर की बारहदरी।

कविराय—(आकर) कविता, कविता, कविता करनी चाहिए। तमाम दुनिया के निठल्लों को मैं सलाह देता हूँ कि कविता करनी चाहिए। पूछो किस वास्ते? इस वास्ते कि काम करने के बाद थकन सताती है, भोजन करने के बाद सुस्ती आ जाती है, परन्तु कविता करने के बाद—खुशी की धौंकनी से छाती फूल जाती है। कवि अपनी कविता-शक्ति से समाज की बिखरी हुई शक्तियों को संगठित कर देता है, और संगठित शक्ति को लेखनी की नोक से-छिन्न भिन्न कर देता है। विचारों की सीढ़ी से ज़मीन की चीज़ों को आस्मान पर पहुंचा देता है-और आस्मान की चीज़ों को ज़मीन पर गिरा देता है। निडरपन की तो इसके हद ही नहीं, कभी कभी परमात्मा तक को उल्टी सीधी सुना देता है। इस बात पर मुझे एक कविता याद आगई:—

जहां पवन का गम नहीं, जहाँ नहीं रवि जाय।
वहाँ कल्पना-पंख मे, कवि कपोत मँडलाय॥

इसीलिए तो मैंने आज इस बारहदरी में कविता-कामिनी के प्रेमियों को इकट्ठा करने का 'स्वयम्बर' रचा है, और इस

स्वयम्वर का नाम 'कवि-सम्मेलन' रक्खा है। अब देखना है कि कविता सुन्दरी किसको मालदार समझकर वरमाल पहनाती है—और किसको दिवालिया क़रार देकर धुतकार बताती है। अरे बुधुआ! ओ बुधुआ!—अबे क्या कानों की सुरंग पर किसी ने पत्थर रख दिया है—जो सुनता ही नहीं? ऐसे ही नौकरों को सुधारने के लिए मैंने 'सेवा-धर्म्म' नाम वाला शास्त्र रचा है-जिसका पहला सूत्र यही है—चाकर है तो नाचाकर। राज-कर्म्मचारियों में-प्यादे से लेकर वज़ीर तक, व्यापारियों में-मजूर से लेकर मुनीम तक—और मठाधीशों में ड्योढ़ीवान से लेकर कामदार तक, सब मेरे इस सूत्र के आगे सर झुकाया करते हैं-परन्तु जिसके लिए इसकी रचना की है-उस बुधुआ में अभी तक सेवाभाव का अभाव है। (ज़ोर से) अबे ओ बुधुआ के बच्चे।

बुधुआ—(नेपथ्य से बोलते हुए-आकर) जी, जी, जी, जी, जी, श्रीमान्जी। क्या आपने मुझे बुलाया?

कविराय—भई वाह! क्या स्वछन्द की तरह खिंचता हुआ आया! अबे, कविसम्मेलन का समय होगया- और तूने अभी तक दर्वाज़े पर शुभागमन भी नहीं लगाया? मूर्ख, तू नहीं जानता यह कवि लोग ज़रा से अनादर पर रुष्ट होजाते हैं-और फिर कविता सुनाने के बदले रस्सी की तरह ऐंठते ही जाते हैं?

बुधुआ—श्रीमान्जी, रुष्ट न हूजिए। द्वार पर शुभागमन मैंने इसलिए नहीं लटकाया कि उसमें 'भकार' आता है, जो दग्धाक्षर समझा जाता है।

कविराय—क्या कहा ? दग्धाक्षर ? हे भगवान् ! हे भगवान् !

बुधुआ—अजी, यह आप क्या कहने लगे श्रीमान् ? 'भगवान्' में भी तो है दग्धाक्षर विराजमान।

कविराय—अब समझ में आया—वर्णमाला बनाने वाले जुरूर भङ्ग पीते थे तभी तो अक्षरों में—दग्धाक्षर ठोंक दिए। (अपने हाथ की लिखी हुई कविता-पुस्तक बुधुआ को दिखाते हुए) कवि सम्मेलन में पढ़ी जाने वाली मेरी आज की कविता तो देखले—कहीं इसमें तो कोई दग्धाक्षर नहीं आगया ?

बुधुआ—यह तो मैं सुबह ही देख चुका हूँ—इसमें दग्धाक्षर क्या—अक्षर ही नहीं।

कविराय—अबे भूला, भूला, तेरे साथ मैं भी भूला, दग्धाक्षर तो आरम्भ में बुरा होता है, शुभागमन में तो एक अक्षर के बाद दग्धाक्षर आता है।

बुधुआ—तो मैं भी तो आपके बाद ही का कवि हूँ। मेरी राय में तो—आदि में हो या मध्य में,—दग्धाक्षर तो दग्धाक्षर ही है।

कविराय—अच्छा तो ऐसा वाक्य लिखवाए देता हूँ, जिसमें दग्धाक्षर नहीं आएगा। जा—लेखनी और तख्ती उठाला। (बुधुआ का जाना, कविराय का स्वगत कहना) जब सारी दुनिया सोती है—तो कवि जागता है, जब सारी दुनियां में—अकाल पड़ता है, सैलाब आता है,

महामारी फैलती है, राजा की सेना लड़ती है, तो कवि मज़मून बाँधता है। मूसलाधार वर्षा उसे हँसानेवाली, पपीहे की पीपी और कोयल की कूकू उसके नश्तर चुभानेवाली, मसान की अग्नि उसे चेताने वाली और हरिनाम सत् की पुकार-उसे एक नवीन रस में न्हिलादेने वाली होती है। कवि की पदवी भी सृष्टिकर्त्ता से किसी प्रकार कम नहीं; बल्कि जियादा ही है :—

लख चौरासी से आगे कर सके दक्ष विस्तार नहीं।
कवि की भाव सृष्टि का लेकिन-कहीं वार और पार नहीं॥

(बुधुआ का लेखनी और तख्ती के साथ आना)

कविराय—(लम्बी लेखनी देखकर) अबे यह क्या उठा लाया? खेत जोतने का हल या धान कूटने का मूसल?

बुधुआ—श्रीमानजी, कविरायजी की लेखनी भी लेखनी-राज्ञी होनी चाहिए।

कविराय - अच्छा लिख मैंने ऐसा वाक्य सोच लिया- जिसमें दग्धाक्षर दग्ध है। जिस तरह मैं बोलूँ-उसी तरह लिखना, जो मैं बोलूँ वही लिखना।

बुधुआ—जो आज्ञा श्रीमान् जी।

कविराय अच्छा तो उठा क़लम।

(बुधुआ लिखता है—'अच्छा तो उठा क़लम')

अबे यह क्या लिख दिया?

(बुधुआ लिखता है-'अबे यह क्या लिख दिया'?)

अबे मूर्ख, अधम, लिख—स्वागतम्, स्वागतम्।

बुधुआ—श्रीमान् जी, आप ही की तो आज्ञा थी कि जो मैं बोलूं वही लिखना। भला आज्ञाकारी गुरू जी की अवज्ञा कैसे कर सकता है?

कविराय- अबे आज्ञाकारी के बच्चे, इस लेखनी से पहले तेरा ही सर उड़ाया जायगा। (लेखनी छीनकर बुधुआ को मारना, इसी समय कवि-सम्मेलन में आमन्त्रित कवि—कविकुंजर, कविकेसरी, कविदिग्गज, कविकच्छप, का आजाना)

कविकेसरी—वाह! कविराय महोदय तो वीर रस का अभ्यास कर रहे हैं!

कविराय—पधारो, पधारो, कविता-गगन के उदीयमान सितारो, पधारो। (बुधुआ से) अबे वह तिपाई तो खेंच ला। (बुधुआ नेपथ्य से तिपाई खेंचता है, चारो उस पर बैठते हैं)

कविदिग्गज—(कविराय से) आप भी तो विराजिए।

कविराय—विराजिए आप विराजिए, दूसरी तिपाई और है। (बुधुआ दूसरी तिपाई खींचता है-कविराय उस पर बैठते हैं)

कविकुंजर—कहिए-अब क्या देरदार है?

कविराय- बस सभापति जी का इन्तिज़ार है। (बुधुआ सभापति के बैठने को ऊंची चौकी खींचकर बीच में डालता है)

कविकच्छप -सभापति किसको चुना गया है?

ऐसी अवस्था म आपने जो मेरा आदर किया है- यह सब आपकी उदारता है-मेरी महानता नहीं।

सब— धन्य-धन्य।

कविराय—इस कविसम्मेलन की समस्या है काव्यमूर्ति काव्यावतार-

'इसीलिए आनन्द की जगह नहीं संसार'।

प्रतिमा—अच्छा, तो इसकी पूर्ति में बनाई हुई कवितायें आरम्भ हों।

कविकुञ्जर—कविकेसरी जी, पहले आप।

कविकेसरी—नहीं कविदिग्गज जी. पहले आप।

कविदिग्गज—नहीं, कविकच्छप जी, पहले आप।

कविकच्छप—नहीं, कविकुञ्जर जी. पहले आप।

कविकुञ्जर—इस 'पहले आप' का निर्णय सभापति जी पर ही रखिए।

प्रतिमा—तो पहले आप ही कहिए।

कविकुञ्जर-ऐसी ही आज्ञा है तो प्रथम यह कविकुञ्जर ही चिंघाड़ता है-

जाड़ों में तो जुओं की रहती है भरमार।
गर्मी में खटमलों से सोना है दुश्वार।
वर्षा में मच्छर हमें देते कष्ट अपार।
'इसीलिए आनन्द की जगह नहीं ससार'।

बुधुआ- वाह कविकुञ्जर जी, कुञ्जर होकर मच्छरों से डर गए?

कविराय—चुप बे, तू क्या जानता है ? इस छन्द में मौलिकता है; जाड़ा, गर्मी, बरसात तीनों मौसिमों के एक विशेष कष्ट का क्रमशः वर्णन है।

कविकच्छप—और फिर कुञ्जर का तो छोटी सी चींटी भी नाक में दम कर देती है।

प्रतिमा—आप ठीक कहते हैं कविकच्छप जी। परन्तु कविकिङ्कर जी की भावना है कि कविता में कुछ गम्भीरता चाहिए।

कविराय—गम्भीर विषय पर कविकेसरी जी दहाड़ेंगे।

प्रतिमा—(कवि केसरी से) हां—अब आप ही की हो।

कविकेसरी—जो आज्ञाः—

हमसे रसिक हँसोड़ को मिली कर्कशा नार।
हमको कविता से, उसे लड़ने से है प्यार।
घर में रहती रात दिन जूती और पैजार।
'इसीलिए आनन्द की जगह नहीं संसार'।

बुधुआ—इसमें गम्भीरता क्या है? यह तो आपबीती कही है।

कविराय—चुप, तू फिर बोला ? यह कवि के गृहस्थाश्रम का चित्र है। हाँ—कविकच्छप जी, अब आप अखाड़े में कूदिए।

कविकच्छप—मैं तो आपके बाद सरकूंगा।

कविराय—कहिए, कहिए, मैं भी कहूंगा।

कविकच्छप—अच्छा तो सुनिए.—

खाने को घर में नहीं, चना, बाजरा, ज्वार।
बढ़ता जाता है मगर नवें मास परिवार।

रोटी की दिन रात है सिर पर फ़िक्र सवार ।
'इसीलिए आनन्द की जगह नहीं संसार' ।

बुधुआ—यह कुछ हुई ।

प्रतिमा—(कविराय से) अच्छा, अब आपकी होगी ।

कविराय—(कवि दिग्गज की ओर सङ्केत कर के) मैं तो आपके बाद कहूँगा ।

कविदिग्गज—हमारी तो सब से अन्त में रहेगी ।

प्रतिमा—(कविदिग्गज का मुटापा देखकर) हाँ-कविदिग्गज जी को तो अन्त ही में बोलना चाहिए । (कविराय से आप ही कहिए ।

कविराय—अच्छा, जैसी आज्ञा :-

बालापन में बालहठ रहती सदा सवार ।
युवा काल में काम का होता मनुज शिकार ।
वृद्धावस्था में करें नाना रोग प्रहार ।
'इसीलिए आनन्द की जगह नहीं संसार' ।

बुधुआ—यह हुई सच्ची समस्या-पूर्त्ति । सभापति महाशय, मेरा प्रस्ताव है कि विजयहार का उपहार आपही को दिया जाय।

प्रतिमा—अभी तो कविदिग्गज जी रह गए हैं ।

कविदिग्गज—मुझे तो आज्ञा हो चुकी है कि अन्त ही में बोलूँ । इसलिए मेरा प्रस्ताव है कि सभापति जी अपने श्रीमुख से कुछ कहें ।

बुधुआ—(प्रतिमा से) हाँ श्रीयुत जी (कविराय की ओर सङ्केत कर के) श्रीमान् जी के बाद आप ही की रहे ।

प्रतिमा—यही अनुरोध है तो सुनिये :—

गया नायिका-भेद में प्रतिभा का भण्डार ।
नख-शिख-वर्णन ही रहा कविता का शृङ्गार ॥
जनता का करती नहीं कवि-लेखनी सुधार ।
इसीलिए आनन्द की जगह नहीं संसार ॥

कविराय—धन्य, धन्य, सभापति जी महाराज, आपकी समस्या-पूर्ति ने तो आँखें खोल दीं ।

कविदिग्गज—निस्सन्देह, सभापति जी ने सभापति-पद के योग्य ही समस्या-पूर्ति की ।

बुधुआ—(कविदिग्गज की ओर संकेत करके) अब आपकी बारी है ।

कविदिग्गज—मेरी बारी तो (बुधुआ की ओर संकेत करके) कविकिंकर जी के भी बाद है ।

बुधुआ—अजी मैं तो कविकिंकर ही हूँ, कविकिंकर—क्या कहेगा ?

प्रतिमा—नहीं, नहीं, तुम भी कहो ।

बुधुआ—जो आज्ञा—

हार बहार निहार है तार सितार कतार ।
भार संभार उभार है नार किनार अनार ॥
मार धमार कुमार है सार असार कसार ।
इसीलिये आनन्द की जगह नहीं संसार ॥

कविराय—अबे यह क्या बक दिया जिसमें न अर्थ न अलंकार।

बुधुआ—अर्थ और अलंकार लाने का मैंने ठेका नहीं लिया है, मैंने तो सिर्फ़ तुकें मिलाना ही सीखा है सरकार।

प्रतिमा—अच्छा कविदिग्गज जी, अब तो आप की बारी आही गयी।

कविदिग्गज—अच्छी बात है, तो यह कविदिग्गज श्रीचतुरानन, षडानन, सहसानन का वन्दन कर अपना आनन खोलता है:—

निघस काल कान्तार क्या प्राप्त नहीं मृत्द्वार।
तर्ष दण्ड उपलब्ध ध्रुव अकूपार का नार।
भव धव-प्राणागार है रेणुसार नीहार।
इसीलिये आनन्द की जगह नहीं संसार॥

बुधुआ—भई वाह,यह समस्यापूर्ति है या ख़ुद एक समस्या? क्या उगला आपने? निवस काल? यह क्या है बवाल? जिसका अर्थ कविदिग्गज जी जानें या ऊपरवाला दीनदयाल?

कविदिग्गज—अरे यह उच्च कोटि का साहित्य है, जिसमें पांडित्य ही पांडित्य है।

बुधुआ—ख़ाक साहित्य और पाण्डित्य है! छछूंदर की दुम में हाथी बाँधा गया है। न जानें आप जैसे कवियों को इसमें

क्या आनन्द आता है कि-कोष की पुरानी खकोडन में से-जान बूझ कर ऐसे ऐसे भारी शब्द ढूँढ कर लाते और रखते हैं-जिनको जनता ने-तीन पीढ़ी पहले से व्यवहार में लाना छोड़ दिया है।

कविदिग्गज—यही तो साहित्य है।

बुधुआ—साहित्य नहीं यह साहित्य की हत्या है। इस प्रकार का साहित्य महाविद्यालयों में पढ़नेवाले छात्रों के मस्तिष्क में ऐसा अजीर्ण पैदा कर देता है कि जीवनभर उनका स्वास्थ्य ही नहीं बनता, (कविकेसरी से) कहिये आप कुछ समझे ?

कविकेसरी—हम तो कुछ नहीं समझे।

बुधुआ—(कविकच्छप से) आप समझे ?

कविकच्छप—हम भी कुछ नहीं समझे।

बुधुआ—तो निश्चय हुआ-केवल कठिन कठिन शब्दों का आडम्बर है, न भाव है न अर्थ ।

कविदिग्गज—अर्थ कैसे नहीं है ? यही तो साहित्य है ! सुनो-'निदम' नाम है भोजन का, और 'काल' का अर्थ है समय।

बुधुआ—तो फिर 'भोजन का समय'-यही क्यों न कहा ?

कविदिग्गज—यही तो साहित्य है। जहां तक गंभीर शब्द मिलें सरल नहीं कहना चाहिये। 'कान्तार' कहते हैं गन्ने को और 'मृत्खार' मूली को। अब अर्थ समझो,-'भोजन के समय गन्ना क्या, मूली भी प्राप्त नहीं है'। यही तो साहित्य है।

बुधुआ—साहित्य वाहित्य कुछ नहीं, अपने गधे का नाम सोहना रख दिया है।

कविदिग्गज—अपमान, अपमान, एक महान् विद्वान् का महान् अपमान ! (कविराय से) अपमान के लिए विद्वानों को यहाँ बुलाया है कविराय ?

कविराय—क्षमा करें द्विजराय, (बुधुआ की ओर संकेत करके) इसकी धृष्टता पर ध्यान न देकर मेरी ओर देख।

प्रतिमा—कृपया शेष चरणों का भी अर्थ कहें।

कविदिग्गज—सभापतिजी का धन्यवाद। अगले चरणों का अर्थ सुनिये–तर्ष-प्यास, दण्ड-समय, उपलब्ध-प्राप्त, ध्रुव-निश्चय अकूपार–समुद्र, नार–जल। इससे यह स्पष्ट हुआ कि–'प्यास के समय समुद्र का जल निश्चय प्राप्त है। यह तो आप सभी जानते हैं कि समुद्र का जल खारी होता है–जो पीने योग्य नहीं।

बुधुआ—जिस तरह समुद्र का जल पीने योग्य नहीं–उसी तरह यह कविता भी सुनने योग्य नहीं।

कविदिग्गज—फिर अपमान, फिर अपमान !

कविराय—कुत्ते के भौंकने से हाथी नहीं रुकता। आप तीसरे चरण का अर्थ कहिये श्रीमान्।

कविदिग्गज—तीसरे चरण में तो हमने साहित्य कूट कूट कर भर दिया है।

बुधुआ—(स्वगत)या कूट कूटकर साहित्य का चूरा करदिया है।

कविदिग्गज—भव-संसार, धव-मनुष्य, प्राणागार-शरीर, रेणुसार-कपूर, नीहार-पाला। अर्थात् 'संसार में मनुष्य-शरीर कपूर और पाला है'। यही तो साहित्य है।

बुधुआ—निश्चय यह साहित्य का दिवाला है, या साहित्य को कलुषित कर डाला है।

कविदिग्गज—तीसरी बार अपमान। अबे छोकरे, हमारे काव्य का बड़े बड़े विद्वान् अर्थ नहीं लगा सकते। यही तो साहित्य है। अगर कोई अर्थ लगादे तो हम उसके शिष्य हो जाँय, या कविता करना ही छोड़ दें।

बुधुआ—तो कविता करना ही छोड़ दीजिये।

कविदिग्गज—(डण्डा उठाकर) कविता करना छोड़ दूं या तेरा सर फोड़ दूं ?

कविराय—सावधान, सावधान, (कविदिग्गज को पकड़ लेते हैं)

प्रतिमा—(आसन से खड़े होकर) सुनिये, सुनिये श्रीमान्। कवि का लक्ष्य यह होना चाहिये कि वह मनुष्य को सोई हुई प्रवृत्तियों को जगादे। निर्जीव को सजीव और अज्ञानी को ज्ञानी बनादे। यदि समाज में दुराचार हो-तो ऐसी कविता करनी चाहिये कि सदाचार की गंगा बहने लग जाय। यदि देश-वासियों में देश-प्रेम की कमी हो-तो लेखनी का विषय वह होना चाहिये जिससे प्रत्येक नवयुवक जननी जन्म-भूमि के लिये सर्वस्व दान को तत्पर होजाय। यदि समरस्थल में सिपाहियों ने हथियार रख दिये हों-तो काव्य में ऐसा ओज होना चाहिये कि

प्रत्येक सैनिक का पाँव पीछे हटने के बदले आगे बढ़ जाय। और यदि माया मोह के पीछे संसार दौड़ रहा हो-तो कविता की प्रत्येक पंक्ति में वह उपदेश होना चाहिये-जिससे शरीर के भूठे भोगों में लिप्त रहनेवाला प्राणी-अपना वास्तविक चिदानन्द पद पाजाय। इसलिये-सभापति के स्थान से-आज की समस्या-पूर्तियों में-एक ही कविता सर्वश्रेष्ठ घोषित की जाती है, और वह है (कविराय की ओर संकेत करके) आपकी कविता। जिसमें बालकपन, युवावस्था और बुढ़ापे के क्लेश दिखाकर बताया गया है कि इसीलिये संसार आनन्द की जगह नहीं है।

(कविराय के गले में जयमाला पहनाना)

बुधुआ—जय जय, श्रीकविराय महाराज की जय।

कविकेसरी—देखा कविदिग्गज जी ?

कविदिग्गज—देखा, बिल्कुल मिली भगत है। अपने घर बुलाकर, अपनी पसंद का सभापति चुनकर, अपने ही गले में विजय-हार डलवाया जाता है और हम विद्वानों का अपमान कराया जाता है।

कविकुंजर—चलो, यहाँ बैठना भी हास्यास्पद है।

कविकच्छप—ऐसा कवि-सम्मेलन अपमान-जनक है।

(कविकेसरी,कविदिग्गज,कविकुंजर,कविकच्छप का जाना)

कविराय—श्री १००८ सभापति जी महाराज, सचमुच आपने मुझे जागृति दी। मैं आज तक सच्ची कविता का अर्थ ही नहीं समझा था। हमेशा पद, पदक, और पारितोषिक पाने ही के लिये पद्य पढ़ा करता था। अब प्रतिज्ञा करता हूँ कि कहीं

एकान्त में गंगा किनारे-बैठकर आत्मकल्याण के लिये लिखा करूंगा और आपको अपना गुरुदेव समझूंगा।

प्रतिमा—अभी इसका समय नहीं आया, दक्ष-यज्ञ के बाद यह अनुष्ठान होगा।

कविराय—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा गुरुदेव।

प्रतिमा—यह आप क्या करते हैं? मेरे हाथ न जोड़िये, मुझसे गुरुदेव न कहिये।

कविराय—क्यों?

प्रतिमा—गुरु तो आप बहुत पहले प्रतिमाजी को बनाचुके हैं।

कविराय—हैं. यह आपने कैसे जान लिया? घर के भीतर की बात बाहर कैसे आयी? प्रतिमा जी का आपसे क्या सम्बन्ध? सभापति जी महाराज, जरा संभल कर बात कीजिये।

प्रतिमा—मेरा कहना ठीक है, प्रतिमा से मेरा वही सम्बंध है जो नेत्रों का नेत्रों की ज्योति से।

कविराय—हैं?

प्रतिमा—मोती का मोती की चमक से।

कविराय—यह क्या?

प्रतिमा—पानी का पानी की लहर से।

कविराय—बस महाराज!

प्रतिमा—फूल का फूल की गन्ध से—

मैं सूर्य तो वह है सूर्य किरण,
मैं ब्रह्म हूँ तो वह माया है।

मैं और नहीं वह और नहीं,
मैं काया तो वह छाया है॥

(सर का साफ़ा खोल देना)

कविराय—हैं! मेरी प्रतिमा! देवी! तुम्हीं सभापति थीं! आज से तुम प्रतिमा नहीं रहीं-प्रतिभा होगयीं—

गाना (१७)

देवी तुम मेरी वाणी हो।
प्रतिमा—इस वाणी के हैं अर्थ आप।
बुधुआ—दर्म्यान में अर्थ और वाणी के—
मैं कविता-कानन का कलाप॥
कविराय—तुम चन्दा हो।
प्रतिमा—तुम सूरज हो।
बुधुआ—तो मैं भी एक सितारा॥
कविराय—तुम वीणा हो।
प्रतिमा—तुम हो सितार।
बुधुआ—तौ मैं भी हूँ इकतारा॥
कविराय—तुम गंगा हो—
प्रतिमा—तुम सागर हो—
बुधुआ—तो मैं दोनों का हूँ मलाप।
इन कवि कविनी के साथ साथ—
कविकिंकर की है अमर छाप।

(सब का जाना)

स्थान—यज्ञशाला

(सुरपति, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम, कुवेर, भृगु, पूषा आदि देवगण यथास्थान विराजमान हैं, एक ओर महर्षि नारद, प्रजापति दक्ष और कविराय भी उपस्थित हैं। प्रजापति दक्ष की पुत्रियाँ भी बैठी हुई हैं।)

गायन (१८)

देवकन्यायें—

आलि, आयाता शुभा बेला मनोज्ञेयम् ।
मनोज्ञेयम् मनोज्ञेयम् मनोज्ञेयम् मनोज्ञेयम् ॥
विराजन्तेऽत्र राजन्या महोगेयम् हृदोध्येयम् ।
हृदोध्येयम् हृदोध्येयम् हृदोध्येयम् हृदोध्येयम् ॥
शुभेऽस्मिन्नुत्सवेऽस्माभिः शुभं गेयम् पियम् गेयम् ।
प्रियम् गेयम् प्रियम् गेयम् प्रियम् गेयम् प्रियम् गेयम् ॥

कविराय—धन्य, आज की शोभा वर्णन करना तो कविराय की भी सामर्थ्य के बाहर है। फिर भी निवेदन है:-

कञ्चन-जड़ित मणिमण्डित हरित सित,
तड़ित सी कलित ललित दमकाई है।
पत्रावली पुष्पावली मुक्तावली रत्नावली,
दीपावली तारावली भली प्रकटाई है।
द्वार द्वार लगातार कदली बन्दनवार,
कल्पतरु-हार की बहार बिखराई है।
भूमिवाला रूप ढाला, स्वर्गवाला रंग ढाला,
आला यज्ञशाला विश्वकर्मा ने बनाई है

(सामने देखकर) यह लो नवग्रह भी आ रहे हैं।

जिनके होते ही प्रकट तम न रहे लवलेश।
आये वेही यज्ञ में तेजोराशि दिनेश॥

(रंगभूमि पर-लालटूल जैसे फ़ोकस में भगवान् सूर्य का आना)

जय जय भगवान् सूर्यदेव की जय।

दक्ष—देव, आपके लिये वेदी के मध्य भाग में स्थान है।

(सूर्यदेव का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

शीतल, किरणों से करें, जग को सुधा प्रदान।
आये वेही सुधाकर, वेही शशि भगवान॥

(रंगभूमि पर-मोती जैसे रंग के
फोकस में-भगवान चन्द्रदेव का आना)

जय, जय, निशानाथ चन्द्रदेव की जय।

दक्ष—प्रिय जामातृ, तुम्हारा आसन वेदी के अग्निकोण में है।

(चन्द्रदेव का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

लाल वसन प्रिय है जिन्हें, प्रिय है लाल प्रवाल।
आए मङ्गलदेव अब, वही भूमि के लाल॥

(रंगभूमि पर-मूंगे जैसे लाल फोकस
में-महाराज मङ्गलदेव का आना)

जय, जय, महाराज मङ्गलदेव की जय।

दक्ष—देव, आप वेदी की दक्षिण दिशा में सुखासीन हों।

(मङ्गलदेव का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

रौहिणेय हैं, सौम्य हैं, हैं जो चन्द्रकुमार।
आये वे ही देव बुध, विदित बुद्धि-भण्डार॥

(रङ्गभूमि पर-हरे रङ्ग के फोकस में-
भगवान् बुधदेव का आना)

जय, जय, भगवान् बुधदेव की जय।

दक्ष—प्रियवर बुध, तुम वेदी के ईशान कोण में आओ।

(बुधदेव का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

वाक्-गिरा-पति, बृहस्पति, सुर-गुरु सुर-आचार्य ।
आये अपने यज्ञ में, सफल बनाने कार्य ॥

(रङ्गभूमि पर-पीले रङ्ग के फोकस में-
देवगुरु बृहस्पति का आना)

जय, जय, देवगुरु बृहस्पति देव की जय।

दक्ष—पधारिये देव, आप वेदी की उत्तर दिशा में सुशोभित हों।

(बृहस्पतिदेव का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

स्वामी वृष और तुला के जिन्हें धेनु से प्यार ।
आये शुक्राचार्य वे काव्य-कला-आगार ॥

(रङ्गभूमि पर-हीरे जैसे रङ्ग के फ़ोकस
में—आचार्य शुक्र का आना)

जय, जय, आचार्य शुक्रदेव की जय।

दक्ष—देव, आप वेदी की पूर्व दिशा में विराजने की कृपा करें।

(शुक्राचार्य का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

कृपानाथ शनि की रहे, कृपा-पूर्ण ही दृष्टि ।
सुख-सम्पति सम्पन्न हो जिससे सारी सृष्टि ॥

(रङ्गभूमि पर--नीले रङ्ग के फ़ोकस
में-छायासुत शनिदेव का आना)

जय, जय, महाराज शनिदेव की जय।

दक्ष—देव, आपके लिये वेदी की पश्चिम दिशा में अधिष्ठान है।

(शनिदेव का अपने स्थान पर बैठना)

कविराय—

जिनको प्यारे तैल, तिल, हय, कम्बल, इस्पात।
अब आते वे राहु हैं श्यामवरण विख्यात॥

(रंग-भूमि पर–धुएँ जैसे फ़ोकस में–
महाराज राहुदेव का आना)

जय, जय, सिंहिकासुत राहुदेव की जय।

दक्ष—देव, आप नैऋत्य कोण में राजिये।

(राहुदेव का अपने स्थान पर बैठना)

यज्ञ-कार्य में हों हमें केतु देव अनुकूल।
सुधरे बिगड़ी बात सब बनें शूल भी फूल॥

(रंग-भूमि पर–काले रंग के फ़ोकस
में–महाराज केतुदेव का आना)

जय, जय, जैमिनिगोत्रीय महाराज केतुदेव की जय।

दक्ष—देव, वेदी के वायव्य कोण में आप पधारिये !

(केतुदेव का अपने स्थान पर बैठना)

नारद—(स्वगत)—

जिस जगह न दूल्हा होता है, चढ़ती है वहां बरात नहीं ।
है यज्ञ-पुरुष के विना यज्ञ, क्या यह हँसने की बात नहीं ॥

दक्ष—आदरणीय अतिथियो, इस महामहोत्सव के प्रारम्भ में आप सब महानुभावों का हार्दिक स्वागत । यज्ञ की श्रेष्ठता मंडप की सजावट और सामग्री से नहीं, बल्कि यजमान् की श्रद्धा और आचार्य की विद्वत्ता पर निर्भर है । आप सब भली भांति जानते हैं कि यज्ञ सुख, समृद्धि और कल्याण-प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है । स्रष्टा ने जब मनुष्य-सृष्टि रची तो साथ साथ यज्ञ भी रचा; और सृष्टि को यह महापहार देते हुए कहा कि-इससे संतुष्ट हुए देवता प्राणीमात्र को आयु, आरोग्य, धन, धान्य, ऐश्वर्य और सन्तान प्रदान करेंगे । कौन नहीं जानता कि यज्ञ के द्वारा ही सुर, असुर, नर, किन्नर, पशु, पक्षी, जड़, जंगम और लोक लोकान्तर की उन्नति हुई है ? आप सब भी अपने अपने पहले के किये हुए यज्ञ यागादि का उपभोग कर रहे हैं । यज्ञ ही परं तत्त्व है, यज्ञ ही परं ब्रह्म है ।

कविराय—'दक्ष वाक्यं जनार्दनः' । यज्ञ ही की बदौलत यह नवग्रह भी सृष्टि को अन्न, औषधि, धातु, रस, रत्न, द्रव्य आदि आदि प्रदान करते हैं ।

नारद—परन्तु मैं देख रहा हूँ कि यह यज्ञ इस उद्देश्य से नहीं किया जा रहा है।

कविराय—तो किस उद्देश्य से किया जा रहा है ?

नारद—एक महा शक्ति का अपमान करने के उद्देश्य से। देवाधिदेव महादेव का तिरस्कार करने के लक्ष्य से। शिवविहीन यज्ञ आज तक कहीं हुआ है ? अन्तरात्मा कह रहा है-सृष्टि का कण कण कह रहा है-कि यह यज्ञ पूर्ण नहीं होगा, नहीं होगा, नहीं होगा।

दक्ष—अवश्य होगा! अवश्य होगा!! अवश्यहोगा!!! सृष्टिकर्ता का यह भी कर्तव्य है कि परम्परा से होनेवाली कुरीतियों का सुधार करे। शिव जैसे अशिव व्यक्ति का देवताओं की पंक्ति में पूजन होना यज्ञ का कलङ्क है। इसीलिये शिवविहीन यज्ञ रचा कर हम आज से एक पवित्र प्रथा प्रारम्भ करते हैं।

नारद—या अपने हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारते हैं—

शिव को भी अशिव समझते हैं, कुछ होनी है जो ज्ञात नहीं।
आंखें भी हैं, अंधे भी हैं, क्या यह हँसने की बात नहीं ?

दक्ष—(यज्ञ के आचार्य से) कराइये, कराइये, आचार्य-देव, यज्ञ आरंभ कराइये।

आचार्य—यज्ञ तो सपत्नीक हुआ करता है प्रजापते ! महारानी को बुलवाइये।

दक्ष—महारानी आ रही हैं।

नारद—महारानी इस यज्ञ में भाग नहीं लेंगी।

दक्ष—क्यों ?

नारद—यों कि जब एक सुधार किया है तो दूसरा सुधार भी कीजिये। धर्म-कार्य में गठजोड़े के बन्धन से भी मनुष्य जाति को सदाके लिये मुक्त कर दीजिये।

दक्ष—यह तुम कह रहे हो ?

प्रसूति—(प्रतिमा सहित प्रवेश करके) नहीं, मैं कह रही हूँ, प्रजापति की अर्द्धाङ्गिनी कह रही है। शिवविहीन यज्ञ यदि हो सकता-है तो नारी-विहीन यज्ञ भी हो सकता है। मैं इस यज्ञ में भाग नहीं लूंगी।

दक्ष—तो आई क्यों हो ?

प्रसूति—आई हूँ एक इच्छा प्रकट करने के लिये, इस भरी सभा में एक प्रार्थना करने के लिये।

दक्ष—वह क्या ?

प्रसूति— शिव को भी बुलवालो।

दक्ष—इस प्रार्थना का अब समय नहीं रहा।

प्रसूति—समय तो आपके हाथ की चीज है, आप समय के हाथ की चीज नहीं। देव, नाथ, प्राणेश, शिवविहीन यज्ञ की यदि आप प्रथा चला भी देंगे तो क्या उससे आपकी प्रतिष्ठा बढ़ जायगी ? दूसरों का अपमान करके कोई सम्मान नहीं पाता।

नारद—और फिर ऐसे महामहोत्सव के समय ? यज्ञ के अवसर पर ?

दक्ष—चुप रहो, तुम यज्ञ नहीं कर रहे हो, यज्ञ मैं कर रहा हूँ।

प्रसूति—जब आप भाई को इस तरह झिड़कते हैं, अपनी अर्द्धाङ्गिनी की नहीं सुनते हैं, तो आपको अधिकार है यज्ञ करें। मुझे आज्ञा दें।

(जाना चाहती है)

दक्ष—महारानी, कहाँ जाती हो ?

प्रसूति—यज्ञ आप कर रहे हैं, मैं नहीं कर रही हूँ।

दक्ष—महारानी, महारानी, स्त्री को पति की बात का विरोध करना क्या उचित है ?

प्रसूति—पिता को बेटी और जामाता का अपमान करना क्या उचित है ?

दक्ष—ओह ! तुम्हारी उक्ति बिल्कुल बेमौक़े है। मैं इस समय पिता और श्वशुर नहीं, प्रजापति हूँ।

प्रसूति—आप भले ही पिता और श्वशुर न हों, किन्तु मैं अब भी माता और सास हूँ। मेरी इतनी पुत्रियाँ यहां बैठी हुई हैं, परन्तु सती नहीं है। जब तक सती यहाँ नहीं होगी मेरे हृदय को शान्ति न होगी, जब तक सती के नाथ यहाँ नहीं आयेंगे तब तक यह यज्ञ अनाथ की नांई सूना रहेगा—

छा रहीं हों जब घटायें फिर गगन निर्मल कहाँ ?
आग मन में हो लगी तो सृष्टि फिर शीतल कहां ?
वृक्ष विष का बोके पाओगे अमृत का फल कहाँ ?
यज्ञ में जब शिव नहीं हैं तो भला मंगल कहाँ ?
है हँसी अपनी ही झूठी शान झूठी आन में ?
डूब जायेगा हमारा मान इस अभिमान में ?

दक्ष—बस, बस, मैं जान गया, तू भी मेरे शत्रु की पक्षपातिनी है। पिता शिव के गीत गाते हैं; भाई शिव का राग अलापता है; स्त्री शिव की हिमायत करती है; पुत्री शिव की हो चुकी है; सारे घर में विद्रोह, फूट और असहयोग की आग फैल रही है।

नारद—और यह घर की आग बाहर की आग से कहीं ज्यादा भीषण है।

दक्ष—तो जलने दो, घर द्वार जलने दो, संसार जलने दो, दक्ष नूतन सृष्टि रचायेगा, और वह नूतन सृष्टि ऐसी अमर सृष्टि होगी जिसमें संहार और संहार के देवता का नाम निशान भी न होगा। कराइये, कराइये, आचार्यदेव, आप अकेले मुझसे ही यज्ञ का आरम्भ कराइये।

कविराय—महारानी जी, आप ही मान जाइये, आखिर यह आपके पति ही हैं।

प्रसूति—चुप रहो, चापलूस, चाटुकार, तुम्हीं लोगों ने इनका मस्तिष्क विगाड़ रक्खा है। मैं इनकी अर्द्धांङ्गिनी हूँ, मुझे अधिकार है, अनुचित नहीं करने दूंगी। लड़ूंगी, मरूंगी, लेकिन शिवविहीन यज्ञ नहीं होने दूंगी।

नारद—तो मैं भी अब कहता हूँ-शिव आयेंगे और अवश्य आयेंगे, सती आयेंगी और अवश्य आयेंगी, यज्ञ चाहे हो या न हो।

दक्ष—करो, करो, आचार्य, यज्ञ आरम्भ करो।

आचार्य—प्रजापते, पत्नीविहीन यज्ञ नहीं हो सकता है।

दक्ष—हो सकता है।

सती—(प्रवेश करके) नहीं, नहीं हो सकता है। न पत्नी-विहीन यज्ञ हो सकता है न शिवविहीन यज्ञ हो सकता है।

सब—(खड़े होकर) कौन? सती?

सती—हां, सृष्टिकर्ता की नगण्य सृष्टि सती, देवाधिदेव महादेव की अनुचरी सती।

दक्ष—सती, सती, तुझे यहां किसने बुलाया है? तू यहां क्यों आयी है?

सती—किसने बुलाया है? आपके यज्ञ ने। पिता के यहाँ यज्ञ हो और पुत्री सम्मिलित न हो? पिता पुत्री को भूल सकता है, परन्तु पुत्री पिता को नहीं भूल सकती। क्यों आयी हूँ? आयी हूँ यह कहने कि यज्ञ धार्मिक कार्य है। धार्मिक कार्य में

मनमाना उलटफेर करना अनिष्टकारक है। पिता का अनिष्ट पुत्री नहीं देख सकती। इसीलिये सूचित करती हूँ कि भगवान् महेश्वर को भी बलाइये और विधिपूर्वक यज्ञ रचाइये।

दक्ष—यह व्याख्यान कैलास पर रहनेवाले भूतों के लिये है, सुधारकों के लिये नहीं। मैं इस युग का सबसे बड़ा सुधारक हूं। इसीलिये शिवविहीन-यज्ञ की प्रथा चला रहा हूँ।

सती—परन्तु सबसे बड़े सुधारक की दृष्टि-इस बात पर नहीं जाती-कि भगवान् शङ्कर के निरादर से-पितामह ब्रह्मा और विश्वपति विष्णु भी रूठ गये हैं। उन्हें नहीं बुलाया तो वे भी नहीं आये। उन तीनों का एक ही रूप है। अलग अलग होते हुए भी वे तीनों एक ही हैं। आचार्य बतायें, देवगण जवाब दें, नवग्रह स्पष्ट करें, और ब्राह्मणमात्र के गुरु स्वयं अग्निदेव सूचित करें कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश के बिना कहीं यज्ञ हुआ है और हो सकता है? बिना उनके एक अक्षत तक नहीं चढ़ सकता, एक आहुति तक नहीं पड़ सकती।

नारद—यही तो मैं बड़ी देर से कह रहा हूँ कि जब यज्ञ-पुरुष ही नहीं तो यज्ञ कैसे होगा!

सती—यदि मेरे पिता ने महामहिमावान महेश्वर को इस-लिये यज्ञ का भाग नहीं दिया है कि भृगु-सभा में इनके आदर को वे नहीं उठे थे तो यह इन्हीं की भूल है। इन्होंने भूतभावन भगवान् शिव के स्वरूप को समझा ही नहीं। भगवान् शिव

तो त्रिगुणातीत हैं। जो त्रिगुणातीत है उसके लिये विधि निषेध का वन्धन ही नहीं। राग द्वेष ही जिनमें नहीं है- उनकी तरफ़ से किसी का मान अपमान हो ही नहीं सकता। शिव तो संसार के शिष्टाचार से परे हैं; सत्य हैं, शिव हैं सुन्दर हैं—

उन प्रभु में वैर-भाव कैसा, जो निर्विकार परमोज्वल हैं।
गम्भीर हैं सागर के समान, गङ्गा समान जो निर्मल हैं॥

नारद—मैं तो कहता हूं-महादेव को किसी देव अदेव के आदर में उठना ही नहीं चाहिये।

सती—यदि जामातृ के भाव से उनसे द्वेष है-तो देवता के भाव से तो द्वेष नहीं है? देवता के भाव से तो उन्हें बुलाना चाहिये था? इसीलिये मेरा कथन है कि-यह यज्ञ मङ्गलकारी नहीं अमङ्गलकारी है। अपने मङ्गल के लिये, अपने माता पिता के मङ्गल के लिये, सारे संसार के मङ्गल के लिये, इस देवमंडल के सामने, इस ऋषि-समाज के आगे, मैं फिर प्रार्थना करती हूँ कि भगवान् शङ्कर को बुलाइये। नहीं तो—

दक्ष—नहीं तो क्या?

सती—घृत की आहुतियाँ रुधिर की आहुतियां हो जाँयगी, यज्ञवेदी मृत्युवेदी बनजायगी:—

आग बरसेगी अभी इस शान पर, इस आन पर।
बिजलियाँ टूटेंगी इस विद्रोह-पूर्ण विधान पर॥

ध्वंस करने को कराली कालिका के साथ साथ।
काल नाचेगा प्रलय का नाच यज्ञस्थान पर॥

दक्ष—समझा, संहार के देवता की अर्द्धाङ्गिनी बोल रही है।

सती—नहीं, अपने सृष्टिकर्ता पिता की पुत्री बोल रही है, पिता के मङ्गल के लिये मङ्गलमय भगवान् शिव को बुलाने का बार बार आग्रह कर रही है—

जो शिव आये तो यज्ञस्थल यह पुण्यस्थल अभी होगा।
बहेगी प्रेम की गङ्गा, विमल कनखल अभी होगा॥
कहेंगी विश्व की सब सिद्धियां-विश्वेश्वर आये।
यहीं क्या; विश्व में आनन्द और मङ्गल अभी होगा॥

दक्ष—अरे-पर मैं तो संहार के देवता ही को नहीं चाहता, मेरा उससे प्रधान बैर तो यही है।

सती—संहार का देवता तो प्रलय के अन्त तक रहेगा, उसकी सत्ता को कोई नहीं मिटा सकता, कोई प्रजापति इस विधान को नहीं लौट सकता। आप भी नहीं पलट सकते।

दक्ष—सती, सती, तू अपने पिता का अपमान कर रही है।

सती—पिता, पिता, तुम मेरे पति का अपमान कर रहे हो।

दक्ष—पिता का अपमान जन्मदाता का अपमान है।

सती—पति का अपमान जगत्पति का अपमान है।

दक्ष—बस सती, तू आज से मेरी पुत्री नहीं है, मैं समझूंगा सती नाम की मेरे पुत्री पैदा ही नहीं हुई। अघोरी की अर्द्धाङ्गिनी, मेरे यज्ञमडण्प से बाहर निकल जा।

प्रसूति—स्वामी, स्वामी-

दक्ष—चुप प्रसूति, अगर तूने इस समय पुत्री की हिमायत की-तो तुझ से भी मेरा पत्नी का नाता समाप्त हो जायगा। मैं अब किसी के मुख से शिव का नाम नहीं सुनना चाहता। इसीलिये मैंने यज्ञशाला के द्वार पर लिखवा रक्खा है कि-शिव का नाम लेने वाला इस यज्ञशाला से बाहर निकाल दिया जायगा। फिर चाहे वह मेरा पिता ब्रह्मा ही क्यों न हो।

नारद—(स्वगत) हे नारायण, हे त्रिलोकीनाथ, अभिमान की सीमा हो गयी।

सती—(स्वगत) प्राणेश, आपने कैलास में ठीक कहा था-बिना बुलाये पिता के घर जाने में भी अपमान है। परन्तु मैं तो जान बूझकर अपमान के मुख में आयी हूँ। जिस नास्तिक पिता के अंश से मेरा यह शरीर बना है उसी नास्तिक पिता के सामने इस शरीर को भस्म करके ही सच्ची शुद्धि प्राप्त कर सकती हूँ। दक्ष की पुत्री होने का यही दण्ड है, माता सीता के वेष बनाने का यही प्रायश्चित्त है, (प्रकट) पिता, यज्ञशाला के

द्वार पर लिखे हुए तुम्हारे वाक्य ने मेरे पति ही का नहीं-सम्पूर्ण देवजाति का अपमान किया है। तुम्हारे भय से देवजाति आज भीरु है; यहाँ बैठे हुए आचार्य और ग्रह उपग्रह की ज़बानों में कीलें ठुकी हुई हैं; परन्तु तुम्हें इस समय तक पिता कहने वाली यह सती-किंकर्त्तव्य विमूढ़ नहीं है। हृदय की परिपूर्ण दृढ़ता के साथ घोषित करती हूँ कि मैं इस अपमान का बदला लूंगी और अवश्य लूंगी। शास्त्र कहता है कि हरिहर की निन्दा सुनने के साथ ही-या तो निन्दक की जीभ काट लेनी चाहिये अन्यथा उसका सदैव के लिये वहिष्कार कर देना चाहिये। अगर सामने खड़े हुए शत्रु का संहार कर देना बहादुरी है-तो मैं समझती हूं कि उससे भी बड़ी बहादुरी-ऐसी अवस्था में यह है-कि अपना संहार करके-सारे संसार के सामने-बदला लेने का-एक उज्वल आदर्श उपस्थित कर दिया जाय। अन्तर्यामी, मैं अब यही करूंगी, चराचर के स्वामी, मुझे अब यही करने दीजिये।

दक्ष—आत्मघात करेगी ?

सती—आत्मघात ? कायरों का काम है। मैं तो इस हवन-कुण्ड में पहली आहुति शिव ही के नाम की दूंगी और वह आहुति अपने शरीर की दूँगी। यहां की हवन-सामग्री से-शिव के नाम की आहुति देने का मुझे अधिकार नहीं है; अपने शरीर से-उस पवित्र देवता की आहुति देने का पूर्ण अधिकार है; क्योंकि शरीर मेरा है और इसकी नस नस से ध्वनि हो

रही है—शिवार्पणमस्तु, शिवार्पणमस्तु—

(अग्निकुण्ड की ओर जाती है)

दक्ष—सती, सती (हाथ पकड़ना चाहता है)

सती—(और आगे बढ़कर) बस पिता—

हे सदाशिव, कीजियेगा बुद्धि निर्मल बाप को ।
मैं जहां जन्मूं वहां पत्नी कहाऊँ आपकी ॥

(अग्निकुण्ड में कूदना, अग्नि की लपटों का भड़क उठना)

सब—हैं ! हैं ! सती सदेह भस्म होगयी !

नारद—भूकम्प भी होरहा है !

(यज्ञशाला के खम्भों आदिक का हिलना)

कविराय—पहाड़ भी टकरा रहे हैं !

(पहाड़ों के टकराने का घोर नाद)

आचार्य—अनर्थ, महा अनर्थ !

वीरभद्र—(आकर) महा अनर्थ तब नहीं, अब । माताकी मृत्यु का बदला लेने के लिये-यह माता का लाल वीरभद्र उपस्थित है—

सती ने दी है आहुति, पूर्ण आहुति मुझको देना है ।
कि शिव-अपमान का बदला लगे हाथों ही लेना है ॥

ओं नमः शिवाय ।

(दक्ष का सिर काट कर अग्निकुण्ड में डाल देता है, अग्नि की लपट फिर भड़क उठती है)

प्रसूति—सती, सती, पति, पति ।

(अग्निकुण्ड में कूदने जाती है, नारद रोकते हैं, प्रसूति मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर जाती है, वीरभद्र ऋत्विकों पर प्रहार करता है)

नारद—समाप्त हो गया, अयोग्य और अभिमानी प्रजापति का नाटक समाप्त होगया । पितृदेव ! ब्रह्मदेव ! विश्व के निर्माता ! विधाता ! कहां हो ? प्रकट हो । सृष्टि को संभालो, जगत का संकट टालो—

ब्रह्मन् सत्वरमायात संरक्षत स्वसंसृतिम् ।
नोचेच्छंकरकोपेन प्रलयं याति मेदिनी ॥

ब्रह्मा—(आकाश मार्ग से आकर) शान्त, शान्त, मेरे प्यारे नारद शान्त, वीरभद्र शान्त—

है मेरी ही भूल का यह दुखमय परिणाम ।
शम्भु,तुम्हारे बिना अब नहीं चलेगा काम ॥

करो, करो, मेरे साथ उपस्थित देववृन्द, तुम सब भी भगवान् शंकर आह्वान करो :—

नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्त्ते ।
नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्त्ते ॥
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य ।
नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥१॥

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं ।
गजेन्द्रस्य कृत्ति वसानं वरेण्यम् ॥
जटाजूटमध्ये स्फुरद्गंगवारि ।
महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि ॥२॥

(अंतरिक्ष में शंकर का प्रकट होना)

सब—जय, जय, आशुतोष भगवान् शंकर की जय ।

शंकर—स्वयंभू, जो होना था वह हो गया। दुःख इतना ही है कि मेरी सती का शरीर अब इस संसार में नहीं है। परन्तु नहीं, नहीं, उसका नष्ट होने योग्य शरीर इस संसार में नहीं है, उस नष्ट हुए शरीर की पवित्र भस्म अभी तक इस अग्निकुण्ड में है ।

(अग्निकुण्ड में से भस्म
लेकर शरीर पर मलते हैं)

नारद—धन्य महेश्वर ! आपका यह रूप भी निराला रूप है ।

शङ्कर—(भस्म मलते हुए) शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी, अब तुम अर्द्धाङ्गिनी नहीं सर्वाङ्गिनी हो—

तन से त्याग दिया था तुमको मन से नहीं विसारा ।
इसीलिये तो भस्मरूप में आज तुम्हें फिर धारा ॥
रमी हुई थीं रमणी होकर पहले मन मानस में ।
भस्म रूप से अब रमाऊँगा रोम रोम नसनस में ॥

नारद—देवाधिदेव, हम जानते हैं कि सती से आपका इस समय भी वियोग नहीं हुआ है । शिवा और शिव कभी पृथक् हो ही नहीं सकते हैं । परन्तु-पहले—

शिव—क्या ?

नारद—इस दुःखान्त नाटक को सुखान्त बना दीजिये, मेरे भाई और सती के पितृदेव दक्ष को जीवन प्रदान कीजिये, मूर्च्छित पड़ी हुई प्रसूति को सुहाग का दान दीजिये, अपराध क्षमा कीजिये, यज्ञ सफल कीजिये ।

शिव—(ब्रह्मा की तरफ़ देखकर) स्वयम्भू ?

ब्रह्मा—अभीष्ट तो यही है ।

शिव—तथास्तु । परन्तु दक्ष का सिर तो भस्म होचुका ।

खैर, (वीरभद्र से) वीरभद्र, यज्ञ की बलि के बकरे का सिर दक्ष के स्कन्ध पर जोड़ दो।

(सिर जुड़ना और दक्ष का जीवित होना)

दक्ष—बम् बम् बम् महादेव।

कविराय—जय, जय, मृत्युञ्जय भगवान् शङ्कर की जय।

प्रतिमा—(कविराय से) अब अपने वाणप्रस्थ का समय आगया।

नारद—(प्रसूति को उठाकर) देवी, अपने पतिदेव के साथ साथ महादेव के भी दर्शन करो।

(प्रसूति उठकर हाथ जोड़ती है)

ब्रह्मा—अब हम सबका कर्तव्य है कि भगवान् विष्णु का ध्यान करें, यज्ञ की पूर्ति के लिये यज्ञपुरुष का आह्वान करें—

सब—वेत्तारं यज्ञपुरुषं यज्ञेशं यज्ञवाहकम्।
चक्रपाणिं गदापाणिं शङ्खपाणिं नरोत्तमम् ॥१॥
योगीशं योगनिष्णातं योगिनं योगरूपिणम्।
ईश्वरं सर्वभूतानां वन्दे भूतमयं प्रभुम् ॥२॥

(भगवान् राम का विष्णु-रूप में प्रकट होना)

विष्णु—

सफल यह यज्ञ कहलायेगा अब त्रैलोक्य-मंडल में।
सती अवतीर्ण होंगी पार्वती होकर हिमाचल में॥

सब—जय, जय, त्रिलोकीनाथ भगवान् विष्णु की जय।

नौजवान
अङ्क

श्रवणकुमार

इस नाटक का मूल्य ।||)

स्थान—नन्दन कानन।

(इन्द्र का वरुण कुबेर के साथ प्रवेश)

इन्द्र—तभी तो मैं कहता हूँ-क्या होगा ?

नारद—(प्रवेश कर के) क्या होगा ? होगा शिव का विवाह, हम तुम सभी बराती बनकर चलेंगे, और जो भर भर कर हिमाचल-राज के यहां मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग का भोग लगायेंगे। सुनो, मैं वहीं से आरहा हूँ। दक्ष के यज्ञ में शरीर भस्म करदेने वाली सती ने वहीं तो पार्वती के नाम से जन्म लिया है। मैं ने जन्म-पत्रिका देखकर शंकर से परापर्त भी मिलादी है, और पार्वती को उपदेश देकर गिरि-शिखर पर तपस्या करने भी भेज दिया है।

वरुण—पर शिव तो समाधि में लीन हैं। जब से सती-विछोह हुआ है वैराग्य की सीमा पर ही पहुँच गये हैं।

कुबेर—प्रश्न तो यही है कि उनकी समाधि किस प्रकार भंग हो।

नारद—इस समस्या की पूर्ति तो देवराज के निषग का एक ही बाण कर सकता है। रतिनाथ मदन का आह्वान कीजिए, और उसे शिव की समाधि डिगाने हिमालय की ओर भेजिये।

इन्द्र—अच्छी बात है—

देवताओं में मचा कोहराम है।
काम, आओ, अब तुम्हारा काम है॥

काम—(आकर) जय, जय, देवराज इन्द्र की जय।

हलचल कैसी अमरपुरी में ? सुर-समाज क्यों चिन्तित है ?
क्या आज्ञा है देवराज, सेवा में दास उपस्थित है ?

इन्द्र—मदनदेव, तारकासुर के लगातार उत्पातोंने देवताओं का तार बिगाड़ रक्खा है। शिवकुमार ही उसे मार सकता है। यही पितामह ब्रह्मा का वरदान है। इसलिए तुम शिव की समाधि डिगाओ और अमरपुरी का त्रास मिटाओ।

काम—शिव की समाधि डिगाऊँ ? और मैं ? देवराज, शिव से विरोध करनेवाले का तो वही हाल होगा जो दक्ष का हुआ है।

नारद—इस समय तुम्हारे अतिरिक्त और कोई यह काम नहीं बना सकता, प्रशान्त महासागर में ज्वार भाटा नहीं ला सकता।

काम—तो—

गाना नं० १६

प्रीत की है अलबेली रीत ।
मोर नाच उठता है—सुन कर मधुर मेघ—संगीत ॥
चातक का चिल्लाते चाहे जीवन जाये बीत ।
स्वाति—विन्दु को छोड़; सिन्धु को नहीं बनाता मीत ॥
शशि रहते भी—दुख में रजनी करता कमल व्यतीत ।
खिल जाता है—देख सूर्य को होते प्रात पुनीत ॥

—०—

(जाना)

स्थान—वन

(शिव समाधि लगाये हुए बैठे हैं; कामदेव आता है)

कामदेव—(स्वगत) यही शिव हैं। यही महाकाल हैं। ऊर्ध्वरेता, सर्वज्ञ, प्रणाम । जानता हूँ कि—पृथ्वी से उठी हुई आँधी की धूल—आकाश को कितना ही धूसरित करे—परन्तु वह धूल अन्त में—पृथ्वी पर ही गिर जाती है, आकाश को

कुछ भी ठेस नहीं पहुँचाती। फिर भी--पुरन्दर की आज्ञा पालन करता हूँ। (नेपथ्य की ओर देख कर) वसन्त, आओ और इस बीहड़ कानन को रमणीक उद्यान बनाओ। रम्भा, वर्गा, घृताची, मेनका, उर्वशी, तिलोत्तमा, मिश्रकेशी, चित्रसेना, तुम भी सब अपने अपने नृत्य, गान, हाव, भाव और कटाक्ष से इन निष्काम योगी के हृदय में काम-वासना जगाओ।

(कामदेव का ताली बजाना, वसन्त का आकर उस स्थान को रमणीक उद्यान बनाना, अप्सराओं का आना और नृत्यादि आरम्भ करना, कामदेव का अन्तर्ध्यान होना)

गाना नं० २०

अप्सरायें—

यौवन की ज्योति जगा रसिया।

क्या रक्खा है नीरस तप में रस-लहरी में लहरा रसिया॥
कोयल की कू कू तान है, भौंरों का गुन गुन गान है।
कलियों में क्या मुसकान है, ऋतुराज की क्या शान है?

आ इस रँग में रँग जा रसिया।
यौवन की ज्योति जगा रसिया॥

नदियाँ मचल कर प्यार से, मिलती हैं पारावार से ।
लतिकायें प्रेमाचार से, लिपटी हैं जा सहकार से ॥

ऐसे में मौज उड़ा रसिया ।
यौवन की ज्योति जगा रसिया ॥

—०—

(अप्सराओं का जाना)

कामदेव—(प्रकट होकर) सचमुच यह जितेन्द्रिय हैं । सुनता था-पर अब प्रत्यक्ष देख लिया कि--यह योगियों के सिर-मौर हैं । काम-सेना हार गयी । अब स्वय काम को ताल ठोक कर इस अखाड़े में उतरना होगा । जीवन मरण की सन्धि में--खड़े होकर लड़ना होगा । इस पार या उस पार । अन्तिम पुरुषार्थ-अन्तिम अवलम्ब--यही भौरों की डोरी वाला गन्ने का धनुष और फूलों के पाँच बाण हैं (सामने देखकर) उस आम के पेड़ पर चढ़ कर यही बाण इन सिद्धेश्वर पर अब छोड़ने हैं ।

(आम के पेड़ पर चढ़ कर कामदेव पहला बाण शंकर के हृदय पर मारता

है, जिसका शङ्कर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। फिर दूसरा बाण मारता है; वह भी बेकार जाता है। तीसरे बाण पर वे ज़रा विचलित होते हैं। चौथे पर अपने हृदय में पार्वती की मूर्ति देखते हैं। पांचवें बाण पर आँख खोल देते हैं)

शङ्कर—ओह! ब्रह्म के ध्यान में माया की छाया! सच्चिदानन्द, यह क्या दिखाया! (इधर-उधर दृष्टि डालने के बाद कामदेव को देख कर) अब समझ में आया।—पञ्चशायक का अग्नि बाण हिमालय में आग लगाने को बौराया! दुष्ट ले, तेरा ही पाप और तेरी ही काया:—

देख नहीं सकता कभी, त्र्यम्बक कपट कुचाल।
उधर काम की आग है, इधर योग की ज्वाल॥

(शिव तीसरा नेत्र खोलते हैं, उसमें से आग का शोला निकलता है। शोला निकलने से पहले ही देवता लोग त्राहि त्राहि करते हैं, अग्नि का शोला कामदेव पर जाता है, कामदेव शिव शिव कहता हुआ जल कर भस्म हो जाता है)

—०—

स्थान—वन का दूसरा भाग

(आगे आगे भगवान् शङ्कर और पीछे पीछे रति का प्रवेश)

रति—मैं लुट गयी। कैलास के नाथ, मैं अनाथ हो गयी। वह मेरे माथे का सिन्दूर था-जो पुछ गया। वह मेरे सुहाग का बिन्दा था जो मिट गया। जानती हूँ कि--भगवान् शङ्कर की समाधि भंग करने के अपराध में वह भस्म हुआ है। यह भी जानती हूँ कि-पितामह ब्रह्मा का उसे यह शाप भी था कि--त्रिलोचन के कोपानल में तेरा संहार होगा। फिर भी मैं कहती हूँ कि-मेरा पति निर्दोष था। वह तो घटना-चक्र में पिसा है। देवराज की आज्ञा ने उसे इस आग में झोंका है। देव-कार्य में उसने अपने प्राणों का बलिदान दिया है। वह उत्साही था, वह साहसी था। समूचा देव-मण्डल जिस कार्य में साहसहीन हो रहा था-उस में वह सफल हुआ है और प्राण देकर सफल हुआ है। क्योंकि--सारा संसार आज देख रहा है--शङ्कर की

समाधि खुली हुई है। यही मेरे मृत पति की कर्त्तव्य--परायणता है--कृतकार्यता है। हाय ! ऐसे वीर पुरुष की पत्नी उसके वियोग में पागल क्यों नहीं हो जाती ! छाती, तू फट क्यों नहीं जाती ! महेश्वर, भूतेश्वर, तुम अगर आज कामारि हो तो मैं विधवा हूँ। तुम्हीं हो—जिन से मुझे आशा है कि विजेता होकर भी पराजिता की सुनोगे। यह रति, यह अबला, अपने लिये नहीं--प्राणिमात्र के कल्याण के लिये तुम से विनय करती है कि-काम को जीवित कर दो। नहीं तो-मैं ही अकेली सती नहीं होऊँगी; सारी दुनिया उस के बिना जीते जी मर जायगी। तुम बोलते नहीं ? तुम उत्तर नहीं देते ? मन ही मन क्या सोच रहे हो ? मुझ दुखिया की ओर देखो। मैं अपने रँडापे का अञ्चल फैला कर तुम से भीख माँगती हूँ। तुम आशुतोष हो, तुम औढरदानी हो, तुम बिगाड़ सकते हो तो बना भी सकते हो; तुम मार सकते हो तो जिला भी सकते हो। जिला दो, जिला दो, मन्मथेश्वर, मेरे मन्मथ को जिला दो। नहीं तो, अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से भस्म करके मुझे भी उसी के पास पहुँचा दो :—

हाहाकार बहुत सुनली अब शङ्कर सुनो पुकार।
मारक थे अब तक, बन जाओ अब जीवनदातार॥
कृपा-कोर की झलक चाहता दीन दुखी संसार।
उपकारी को प्राण-दान दे करो महा उपकार॥

नर, किन्नर, सुर असुरों की है अब तो दृष्टि चरण में ।
रति ही नहीं-झुकी है भगवन्-सारी सृष्टि चरण में ॥

शङ्कर—शान्त, देवी शान्त, जाओ-तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई। तुम्हारा पति जीवित तो हुआ; परन्तु इस युग में शरीरधारी न होकर अनंग कहलायेगा। हाँ, आने वाले द्वापर युग में तुम जब मायावती होगी तो वह भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के रूप में अवतीर्ण होकर तुम्हें मिल जायगा।

रति—महान् उपकार।

(चरण छूकर जाती है)

शङ्कर—(स्वगत)—

समझ रहा हूँ मैं भी जगमें बहुत उठे उत्पात ।
किन्तु रात जाती है; आता है अब स्वर्ण-प्रभात ॥

राम—(प्रवेश करके स्वगत) सुवर्ण पिघल गया ! यही समय है कि-किसी के गले का हार बन जाय। (प्रकट) महेश्वर !

शङ्कर—कौन ? कौन ? हृदयेश्वर ? सर्वेश्वर ? (मिलते हैं) कंगाल निहाल होगया, यह बीहड़ बन नन्दन कानन से भी बढ़ गया। कहिए ? इस समय, इस जगह, इस रूप में दर्शन देने का कारण ?

राम—दिल की धड़कन, मस्तिष्क की एक उलझन।

शङ्कर—वह क्या भगवन् ?

राम—सती मेरे इसी रूप की तो परीक्षा लेने दण्डक बन में गई थीं ?

शङ्कर—हाँ,

राम—और सीता बन कर गई थीं ?

शङ्कर—हाँ,

राम—और फिर तुम्हारे पूछने पर झूठ बोली थीं ?

शङ्कर—हाँ, हाँ,

राम—आखिर तुमने उन्हें त्याग दिया था ?

शङ्कर—हाँ, हाँ, तो ?

राम—उन्होंने दक्ष के यज्ञ में अपना शरीर भस्म कर दिया ?

शङ्कर—यह आप गई बीती बात का क्यों ज़िक्र कर रहे हैं ? पुराना घाव क्यों फिर से ताज़ा कर रहे हैं ?

राम—इसलिये कि इसी रूप से तुम्हें बताऊँ—सती अपराधिनी नहीं थीं; वह केवल मेरी माया की प्रेरणा थी जिसने उन्हें छकाया, उनसे झूठ बुलवाया।

शङ्कर—वाहरे जादूगर ! मूसे को मार कर गोबर सुंघाने आया ! ऐसा खेल ही क्यों रचाया ?

राम—इस में कई रहस्य थे। सती-चरित्र द्वारा संसार की स्त्रियों को पति से झूठ बोलने का परिणाम दिखाना, अभिमानी दक्ष का अभिमान मिटाना, ब्रह्मा को उन की भूल

बताना और अपने अभिन्न सम्बन्धी शिव के अविचल और अडोल रूप का त्रैलोक्य-मण्डल को दर्शन कराना।

शङ्कर—या बावले को और बावला बनाना !

राम—

जगत में जो भी होता है वो अच्छे ही को होता है।
बुराई ही भलाई है, वही हँसता जो रोता है॥

शङ्कर—क्षमा करो दयालु, मैं यह व्याख्यान नहीं सुनना चाहता। मुझे अपनी निर्विकल्प-समाधि ही में आनन्द आता है। बुराई, भलाई, हँसना, रोना, इन सब के ऊपर जो तुम्हारा शान्त रूप है वही भाता है।

राम—यह व्याख्यान यूँ ही तुम्हें थोड़े ही सुनाया है, इस की दक्षिणा ली जायगी।

शङ्कर—वह क्या ?

राम—तुम्हारा विवाह रचाया जायगा। यह सन्यासी का कैलास फिर गृहस्थ का भव्य भवन बनाया जायगा।

शङ्कर—हँसोड़, अब यह हँसी छोड़ दो। मैंने तो अपना विवाह सदा के लिये जलती हुई चिताओं की अग्नि से कर लिया है।

राम—घबराओ नहीं-अग्नि ही में शुद्ध होनेवाली सती की पार्वती नाम वाली पवित्र ज्योति का तुम से पाणिग्रहण होगा। तभी इस दिल की धड़कन और इस मस्तिष्क की उलझन का निराकरण होगा। जाओ, जिस सती शरीर की भस्म मल कर तुमने अभिन्नता प्रकट की थी-उसी गौरी, उसी

गिरिजा, उसी मेनकात्मजा, उसी हिमाचल-सुता की अपूर्व भक्ति और अनन्य प्रीति की परीक्षा लेने गौरीशिखर पर जाओ! वह तुम्हारे ही लिए अपने माता पिता की जानकारी में वहाँ तपस्या कर रही है। चाँद से चांदनी कभी पृथक् नहीं हुई है। सूर्य से उस की धूप कभी अलग नहीं रही है।

शङ्कर—यह मैं क्या सुन रहा हूँ?

राम—वही, जो मेरा हृदय कह रहा है। वही जो मेरी इच्छा है।

शङ्कर—अच्छी तुम्हारी इच्छा है! मैं तो इसके लिये क्षमा ही चाहता हूँ।

राम—कैसी क्षमा? अब तो मैं यह कहूँगा कि-यह मेरी इच्छा ही नहीं, अनुरोध भी है।

शङ्कर—अनुरोध?

राम—हाँ, हाँ, तुम्हें फिर विरागी से अनुरागी बनाना है।

शङ्कर—क्या कह रहे हो?

राम—ठीक कह रहा हूँ-तुम्हारी दुनिया फिर बसाना है। (उत्तर न मिलने पर) क्यों, मौन कैसी धारण की है? मेरे प्यारे, अब यह मेरी इच्छा ही नहीं, अनुरोध ही नहीं, आज्ञा भी है (कुछ ठहर कर):—

कृषक ने काट ली खेती तो फिर वह बीज बोता है।
सुबह को फिर उदय मार्त्तण्ड उदयाचल से होता है॥

शङ्कर—ऐसी ही आज्ञा है ? धन्य महाप्रभु। सचमुच तुम अपार हो। इसीलिये त्रिलोकीनाथ हो; चराचर के स्वामी हो। तुम्हारी जय हुई। जो शीस सदैव तुम्हारी आज्ञा में झुका है वह आज फिर झुक गया।

राम—अनन्त उपकार; महान् कृपा।

गाना नं० २१

राम—मंगलकारी शम्भवे नमः।
शंकर—जगदाधारी विष्णवे नमः॥
राम—तुम आशुतोष जगवन्दन हो,
मद-सूदन मदन-निकन्दन हो।
शंकर—तुम अरि-सूदन भय-भञ्जन हो,
खल-गञ्जन, जन-मन-रञ्जन हो॥
राम—भव-भयहारी शम्भवे नमः।
शंकर—अधमोद्धारी विष्णवे नमः॥
राम—तुम मुण्डमालधारी शंकर,
कर डमरू, तन पर बाघम्बर।
शंकर—तुम वन-मालाधारी सुखकर,
कर शंख, देह पर पीताम्बर॥
राम—दुख-संहारी शम्भवे नमः।
शंकर—सुख-सञ्चारी विष्णवे नमः॥

—०—

(राम रूप में आए हुए भगवान् विष्णु का एक ओर और भगवान् शंकर का दूसरी ओर जाना)

स्थान—गौरी शिखर
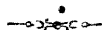
(पार्वती तपस्या कर रही हैं)

देवता—(अन्तरिक्ष में सङ्गीत के स्वरों में,—

या देवी सर्वभूतेषु तपोरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

(भगवान् शङ्कर का ब्रह्मचारी वेश में प्रवेश)

शङ्कर—(स्वगत) हरिः ॐ तत्सत् । कैसा नीरव स्थान है ! और कैसो सदेह तपस्या सामने है ! मानों प्रकृति सम्पूर्ण रूप से शान्ति और तपश्चर्या होकर इस स्थान पर ही बस गयी है । गौरी की घोर तपस्या ही से यह स्थान गौरी शिखर कहलाया है । ब्रह्मचारी बन कर आने वाले मसानी , तूने भी प्रणयिनी-परीक्षा के लिये इस समय उपयुक्त ही वेश बनाया है -

कन्धों पर मृगचर्म मेखला कटि पर धारी ।
कर पलाश का दण्ड भाल पर भस्म उभारी ॥
बाहु मध्य शुभ स्वच्छ फटिक-मालायें प्यारी ।
चरणों में पादुका शीश पर जटा सँवारी ॥
नरतनधारी राम का पालन यह आदेश है ।
गुप्त प्रेम करने प्रकट लिया बटुक का वेश है ॥

(आगे बढ़कर) ओह ! बरसों की विस्मृति स्मृति होकर जाग उठी। आज यह मुख सीता बननेवाली सती का क्षीण मुख नहीं है जो कृष्णपक्ष के चन्द्र की तरह नित्य एक एक कला घट कर अन्त में दक्ष यज्ञ की अमावास्या में लीन होगया। आज तो यह परम पावन पार्वती का खिला हुआ चेहरा है-जो शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति एक एक कला बढ़कर पूर्ण होने जा रहा है। पवित्र पूर्ण कला के पुजारी, फिर थोड़ा आगे बढ़, और चकोर की तरह इक टक निहार। (कुछ थोड़ा चलकर और पार्वती की ओर पुनः देखकर) प्रेमी आशुतोष, इस पूर्णता को प्राप्त होने वाले चाँद से मुखड़े को अब आंखों ही आंखों में अपने प्रेमाश्रुओं का अर्घ्य दे (एक क्षण को आंखों में प्रेमाश्रु आते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण शङ्कर अपने को सम्भाल लेते हैं) अहो, कैसी उज्ज्वलता है ! देख कर आँख उजली होती है। कैसी मनोहरता है ! अनुभव करते ही मन मुग्ध हो जाता है। मानों रात को प्रकाश देनेवाले चन्द्रमा और दिन को खिलने वाले कमल दोनों की शोभा ने एक ही जगह आश्रय ले लिया है—

छुपी सिवार-मध्य नलिनी सी वल्कल-लसित लुनाई ।
या निर्वात कुञ्ज में निश्चल दीपक शिखा सुहाई ॥
सकल सृष्टि सौन्दर्य निरखने एक जगह एकत्रित—
मानों सृष्टिनाथ ने है यह मञ्जुल मूर्ति सजाई ॥

जगा दूँ ? इसी समाधि-अवस्था में गिरि-नन्दिनी को जगा दूँ ? कहीं तपस्विनी के हृदय को ठेस न पहुँच जाय ! (कुछ ठहर कर) जगाना तो पड़ेगा ही । आवश्यक भी यही है और जी भी यही चाहता है। अच्छा, धीरे से पुकारूँ (प्रकट) शैलकुमारी ! (पार्वती के न जागने पर स्वगत) नहीं सुना । गहरी समाधि है । जरा जोर ही से पुकारना पड़ेगा (प्रकट) हिमाचलसुते ! (पार्वती के फिर भी न जागने पर स्वगत) जगानेवाले, तू ही भूल रहा है। शङ्करप्रिया की समाधि पुकारों से कहीं भंग हो सकती है ? तू तो पहले से जानता है-यह साक्षात् तपस्या की मूर्ति है । जिसने अन्न छोड़कर पत्तों के आहार का नियम लिया, और अन्त में उन सूखे पत्तों का सहारा भी छोड़ कर अपर्णा कहलायी, उस गिरिजा, उस उमा को समाधि से जगाना साधारण कार्य नहीं । सचमुच इसका ध्यान-ध्यान की पराकाष्ठा है :—

जगा रहा हूँ न एक मैं ही, हवा भी इसको जगा रही है ।
उछल उछलकर, मचल मचलकर, अचल का आँचल हिला रही है ॥
तू इस से मिलने को आया शङ्कर, यह तुझसे मिलने को जारही है ।
जगेगी कैसे सहज प्रिया यह-स्वयं जो प्रिय में समा रही है ॥

अच्छा, तो फिर-फिर, यह ठीक होगा कि इस समाधिस्था के ध्यान से मैं अपनी मूर्ति हटाऊँ और इस प्रकार सहज ही में इसे जगाऊँ।

(पार्वती ध्यान में जो शङ्कर की मूर्ति देख रही थीं उस की जगह ब्रह्मचारी की मूर्ति देखती हैं, फिर अचानक आँख खोलकर उसी ब्रह्मचारी को सामने देखता हैं)

पार्वती—(आश्चर्य से) कौन! आप कौन हैं महाशय? कहाँ से पधारे हैं?

शङ्कर—कौन हूं-यह मेरा वेश बतायगा। और आ तो कैलास से रहा हूं

पार्वती—(अपने स्थान से उठ कर)-कैलास से? तब तो मैं अपनी सखियों को बुलाती हूँ, वे आप के चरण धोयें।

शङ्कर—सखियाँ क्यों चरण धोयें?

पार्वती—इसलिये कि-मैंने इस आश्रम में यह नियम बनाया है—

शङ्कर—क्या?

पार्वती—कि कैलास की ओर से आनेवाले प्रत्येक अतिथि के चरण धुलाये जाँय।

शङ्कर—आप स्वयं यह सेवा क्यों नहीं करती हैं ?

पार्वती—जिस दिन मेरे सौभाग्य से कोई बड़ा अतिथि कैलास से आजायगा उस दिन मैं भी यह सेवा करूँगी।

शङ्कर—इतनी तपस्या करने के बाद भी आप की दृष्टि में बड़े छोटे का भेद है ?

पार्वती—(अर्द्ध स्वगत) रामावतार होने के बाद भी—जब संसार से छल नहीं गया, तो मेरी आंखों से बड़े छोटे का भेद कैसे जा सकता है ? (प्रकट) कहिए, आप किस अभिप्राय से पधारे हैं ?

शङ्कर—मैं राहगीर—आपको यहाँ तपस्या करते देख—इसलिए ठहर गया—

पार्वती—कि—

शङ्कर—मालूम करूँ कि आप जैसी सुकुमार बालिका—हिमालय के इतने ऊँचे शिखर पर—क्यों इतनी उग्र तपस्या में लीन हैं ? नील कमल की कोमल पखुरी शमी का वृक्ष काट रही है ?

पार्वती—क्षमा करें, आप संयमी ब्रह्मचारी होकर—शृङ्गार में लिपटी हुई कविता क्यों बोल रहे हैं ? खैर, यह आपके विचारने की बात है। मुझे तो आप के प्रश्न से सरोकार है। बुरा न मानियेगा—आपके एक प्रश्न में तीन प्रश्न हैं। मालूम होता है कि प्रश्नोत्तर की पद्धति वाले समाज को या तो एक मुद्दत से आपने छोड़ दिया है; या उसमें

अभी आपका प्रवेश ही नहीं हुआ है । अच्छा, मैं अपनी ही ओर से तीनों प्रश्नों का अलग अलग उत्तर देती हूँ । साधना के लिये कुमार अवस्था ही उपयुक्त है । आरम्भ ही में पित्ता मार कर जिन्होंने अभ्यास किया है-इतिहास बताता है कि-आगे चलकर बड़ी से बड़ी वस्तुएँ उन्हीं के हाथ आयी हैं । मैं तो आप को सलाह दूँगी कि-यदि किसी बड़ी वस्तु की खोज हो तो-आप भी मेरी तरह ध्यानावस्थित हो जाइये ।

शङ्कर—हिमालय ही के शिखर पर क्यों ?

पार्वती—ठहर जाइये, यही तो आप का दूसरा प्रश्न था ? इसी का उत्तर तो अब दूंगी ? आप के स्वभाव में न जाने इतना उतावलापन क्यों है ? हिमालय भी एक देवता है, यज्ञ में इसे भाग दिया जाता है, स्वय स्वयम्भू इस का आदर करते हैं । जिस तरह यह पृथ्वी को दबाये हुए है-उसी तरह इस के शिखर पर बैठ कर तपस्या करने वाला-अगर चाहे तो सुगमता से इस शान्त और ऊँचे स्थान पर अपने मन की व्याकुलता को दबा कर तपस्या कर सकता है:—

हिम गिरि भी यह-दृढ़ता को तपसी के लिये-सहारा है ।
आसन जिसने यहाँ लगाया, उसने मन को मारा है ॥

शङ्कर—धन्य, तो आप की इस उग्र तपस्या का यह स्थान ही कारण है !

पार्वती—यही आप का तीसरा प्रश्न था-जिस के उत्तर में स्वयं ही-आप अपनी कल्पना दौड़ा रहे हैं । सचमुच आप

उतावले हैं। परन्तु--क्षमा करें, अभी तक मन की बात समझने की सिद्धि आप को प्राप्त नहीं हुई है। अच्छा, मैं भी अब थोड़े शब्दों में निवेदन करती हूँ--मेरी उग्र तपस्या का कारण गुप्त है। यह ऐसा उद्देश्य है जो बतलाया नहीं जा सकता।

शङ्कर—उद्देश्य गुप्त रखना तो राजाओं की नीति है, योगियों की नहीं।

पार्वती—योगियों की भी है। (अर्द्धस्वगत) यह बात तो मुझे इस जन्म से पहिले ही एक महान् योगिराज ने सिखा दी है। (प्रकट):—

राजा, योगी दोनों ही अपना मन्तव्य छिपाते हैं।
इसीलिए मेरे मत से--दोनों समान हो जाते हैं॥

शङ्कर—सच्ची बात तो यह है देवी-आप अपने मन्तव्य को चाहे जितना छुपाने की चेष्टा करें, परन्तु वह छुप सकता ही नहीं। हिमालय के शीतल जल और ठण्डे पवन का प्रवाह गुप्त रह सकता ही नहीं (कुछ ठहर कर) हिमालय स्वयं ऐसी वस्तु है जो किसी की आँखों से ओझल नहीं। इसीलिए यहाँ के निवासियों में भी झूठ बोलने का दुर्गुण नहीं। फिर हिमालय-कुमारी पार्वती अपनी तपस्या और तपस्या के लक्ष्य पर कैसे पर्दा डाल सकती हैं? मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि--स्वयं आप के पिता राजा हिमाचल और आप की माता रानी मैना के द्वारा सम्पूर्ण पर्वत-प्रदेश में यह बात व्याप्त हो गयी है

कि—आप भगवान् शङ्कर के लिये यहाँ बैठ कर तपस्या कर रही हैं। (फिर कुछ ठहर कर) कहिये, आप मौन कैसी हो गयीं ? संकोच को किसलिए प्राप्त हो गयीं ? जिस तरह मैंने सत्य बात बेधड़क कह डाली है-उसी तरह आप भी इसे स्वीकार कर लीजिए। सत्यता को छुपाना पाप है।

पार्वती—तो मन की कहूँ ? बुरा तो न मानेंगे ?

शङ्कर—नहीं, नहीं।

पार्वती—सत्यता को तो उसने छुपाया है-जिस ने मेरी तपस्या का भेद जानते हुए भी-आते ही आते-अजान की तरह मुझ से यह प्रश्न पूछने का नाटक रचाया है। (कुछ ठहर कर) कहिये, आप मौन कैसे होगये ? संकोच को किसलिए प्राप्त होगये ? जिस तरह आप ने सत्य बात बेधड़क कह डाली उसी तरह मैं भी कहती हूँ-सत्यता को छुपाना पाप है। ख़ैर, जाने दीजिये, जब बात खुल ही गयी तो कृपा कर स्पष्ट कहिये-आप क्या चाहते हैं ?

शङ्कर—मैं यह चाहता हूं-आप शङ्कर के फेर में न पड़ें।

पार्वती—क्यों ? क्या वे सब से बड़े देवता नहीं हैं ?

शङ्कर—देवता ? होंगे। परन्तु किसी बाला के लिए सब से बड़े वर बनने योग्य कदापि नहीं। तुम ने सुना है ? पिछले दिनों उन्होंने कामदेव ही को भस्म कर डाला।

पार्वती—तब तो आपने उन्हें समझा ही नहीं है, यह मैं समझती हूँ कि वे-सदा से कामदेव को भस्म किए हुए हैं।

शङ्कर—भोली तपस्विनी, वे मसानी हैं!

पार्वती—तभी तो पूर्ण ज्ञानी हैं; मसान ही ऐसी ज्ञान-भूमि है-जहां जगत का धन, ऐश्वर्य, मान, अपमान सब भस्म होता है (अर्द्ध स्वगत) मैं नहीं कह रही हूं-यह स्वयं उन्हीं ने एक बार कहा है।

शङ्कर—उनके पास पहनने को कपड़ा तक नहीं है।

पार्वती—उनका कपड़ा दशों दिशाएं हैं।

शङ्कर—भूषण भी नहीं हैं।

पार्वती—उनके भूषण-सूर्य चन्द्र और तारे हैं।

शङ्कर—राजकुमारी, तुम रेशमी फूलों की साड़ी पहनोगी और शंकर खून टपकता हुआ बाघम्बर। तुम्हारे हाथ में कुंगना, होगा और उनके करों में काले काले सर्प। हाथी पर चढ़नेवाली को-बैलवाले की भार्या बनना शोभा नहीं देता। हिमाचल जैसे धनवान् की पुत्री का दिगम्बर की अर्द्धाङ्गिनी बनना कोरी मूर्खता है। तुम्हीं कहो, क्या वे मैना नन्दिनी के योग्य हैं? जिन के पास फूटी कौड़ी तक नहीं!

पार्वती—फिर कहती हूं-आपने उन्हें समझा ही नहीं। संसार में सब से बड़ा रत्नों का भण्डार यही हिमालय है,

जिसका सब से ऊंचा शिखर कैलास है। कैलास के पति होने के कारण–वे जगत के भण्डारियों में इतने बड़े भण्डारी हैं कि जिनकी तुलना में कोई ठहर ही नहीं सकता। यों दिगम्बर बने रहें, परन्तु इच्छा करें तो एक क्षण में हिमालय के पेट से अनन्त रत्नों को उत्पन्न कर दें (अर्द्ध स्वगत) यह भी उन्हीं के मुख से एक दिन सुना है (प्रकट) और हाथी तथा बैल की आप ने खूब कही ! महोदय, वे ऐसे बैल वाले हैं जिन्हें हाथी वाला इन्द्र सदैव अपने ऐरावत से उतर कर नमस्कार किया करता है। मेरे कान आप के मुख से ऐसी व्याख्या सुन कर मुझ से अनुरोध करते हैं कि वाणी द्वारा मैं आप से क्षमा मांग कर कहूं कि ऐसी बातें और न कीजिए। मैं पार्वती नहीं–चकोरी हूं; जो सदैव चन्द्रमा को प्यार किया करती है।

शङ्कर—क्या कहूं; मुंह पर आयी बात रुकती नहीं। चन्द्रमा में दोषों के साथ साथ अमृत का तो गुण है–शंकर में वह भी नहीं। विष ही विष है। और फिर, तीन नेत्र होने के कारण उनकी आकृति भी डरावनो है।

पार्वती—मालूम होगया–आप और कुछ सुनना चाहते हैं। अच्छा सुनिये। मैं तो यह समझती हूं कि जिस चन्द्रमा की आप प्रशंसा कर रहे हैं--वह स्वयं उनके ज्ञानपूर्ण मस्तक की शरण में रहकर–वहां से अमृत लिया करता है। जिस त्रिनेत्र-वाली आकृति को आप डरावनी कहते हैं–वही उनकी विशेषता है। दो नेत्र तो सभी के होते हैं; उनकी यही खूबी है कि वे

त्रिलोचन हैं। बताइये, उनके सिवा तीसरा नेत्र और किस के पास है ? वह तीसरा नेत्र भी इसलिए है कि उसके खुलते ही संसार नष्ट हो जाता है। संसार का नष्ट होना ही फिर सृष्टि उत्पन्न होने का कारण है (अर्द्ध स्वगत) दक्षराज ने अपने अभिमान के कारण यही तो नहीं समझा, अन्यथा इतनी जल्दी क्यों उनकी ऐसी दशा होती ! (प्रकट) और यह सब इसलिये है कि भगवान् त्रिलोचन संहार के देवता हैं। उत्पत्ति, पालन-दोनों से बड़ा संहार है। इसीलिये मेरे मत से ब्रह्मा, विष्णु, दोनों से बड़े भगवान आशुतोष हैं। तभी तो मैं अपने आशुतोष भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यहाँ घोर तपस्या कर रही हूँ।

शङ्कर—बस, तो मैं भी अब यही समझता हूँ -

पार्वती—क्या ?

शङ्कर—कि अपनी चीज़ का मूल्य लोग स्वयं ठीक ठीक नहीं आँक पाते। तभी तो आप रत्न होकर ग्राहक को ढूंढ रही हैं ; पद्मिनी होकर भ्रमर को खोज रही हैं ; धनाढ्य होकर याचक को तलाश कर रही हैं। ब्रह्मा, विष्णु जैसे देवताओं को छोड़कर उन औघड़ की तपस्या और उन भूतनाथ की प्रशंसा कर रही हैं--जिनके न कुल है, न रूप है, न ऐश्वर्य है, न आचरण है। यह दारुण सत्य है कि—गौरी के साथ—पर्वत प्रदेश की सुन्दरी सखियां होंगी और उस नशेबाज़ के साथ भूत, प्रेत, पिशाच, बैताल आदि होंगे। इन पांओं में मेंहदी होगी और उन नंगे चरणों में पत्थरों की ठोकर से फटे हुए स्थानों का रुधिर बह

रहा होगा। कैसा अनमिल बेजोड़ सम्बन्ध है! कैसा बेतुका संयोग है! भगवान् आपको सुबुद्धि दे, ईश्वर आपकी आंखें खोले।

पार्वती—बस महाराज!

शङ्कर—अरे क्या महाराज,-भङ्ग घोटते घोटते हाथों में छाले पड़ जायँगे।

पार्वती—पड़ने दीजिए। आपको क्यों ऐसी कल्पना कर के कष्ट होता है? छोड़िए मुझे मेरे भाग्य पर। रहने दीजिये मुझे मेरे ही उद्देश्य की सिद्धि में—

जलने पर भी सदा पतङ्गी दीपक पर है जाती।
हिरनी वीणा की ध्वनि पर है जीवन भेंट चढ़ाती।
माना ब्रह्मा और विष्णु को दुनिया शीस नवाती।
त्र्यम्बक को भिक्षुक निहंग अवगुण की खान बताती।
फिर भी जिसकी जगत में जिससे सच्ची प्रीति है।
उसको प्यारा है वही, यही प्रेम की रीति है॥

शङ्कर—जाने दो, मैं भी अब इस प्रसंग को और नहीं बढ़ाऊँगा। अब केवल यह जानना चाहता हूं कि--किस गुरु के कहने से आप में यह भावना और यह लगन उत्पन्न हुई है? देवर्षि नारद के उपदेश से तो नहीं? यदि उनके उपदेश से हुई हो तो मैं कहूंगा--वे तो दोनों पले बजाने वाले गुरु हैं। प्रजापति दक्ष के पुत्रों को वैराग्य का पाठ पढ़ा कर बन भी भिजवाते हैं और दक्ष

जब सृष्टि उत्पन्न करने के कार्य में कमज़ोर पड़ते हैं तो उनकी फब्ती भी उड़ाते हैं।

पार्वती—आप क्यों किसी की निन्दा करते हैं ? मैंने देवर्षि नारद का यह रूप नहीं देखा है। और फिर, इस समय तो उनका ज़िक्र भी बेकार है। मैंने उन्हें गुरु भाव से कभी माना ही नहीं है।

शङ्कर—तब आप का कौन गुरु है ?

पार्वती—क्षमा कीजिये, यह मेरा अपना विषय है। आप किसी और विषय पर बात चीत करें तो अच्छा।

शङ्कर—मेरे लिये तो यही विषय बड़ा है। अब तो मैं सब से पहले यही जानना चाहता हूं कि तुम्हारा गुरु कौन है।

पार्वती— तो शान्ति से सुनिये। यों तो सब का गुरु एक ही घट घट व्यापक ब्रह्म है, परन्तु संसारी जीवों के लिये शास्त्र में अलग अलग गुरु बताये हैं। छात्र के लिये अध्यापक गुरु है। सेवक के लिये स्वामी गुरु है। पुत्र के लिये पिता गुरु है। इसी तरह-इसी तरह-नारी के लिए............।

शङ्कर—उसका पति ही गुरु है। समझ गया, आप शङ्कर को गुरु भी मानती हैं। उन के उपदेश से आपने उन्हीं को प्यार करना सीखा है! कैसी गूढ़ समस्या है!

पार्वती—(अर्द्ध स्वगत) ओह! कैसे कहूँ। उनके उपदेश ही के कारण नहीं-उन्हीं की इच्छा से ऐसा हुआ है। दक्ष राज्या-

भिषेक के समय भी तो–उन्होंने अपनी अर्द्धाङ्गिनी–महाशक्ति ही से बदला लेने का संकेत किया था। आज्ञा में रहने वाली ने–दक्षपुत्री सती बन कर वह आज्ञा पालन करदी (प्रकट) हाँ–हाँ–ब्रह्मचारी महोदय, यह गूढ़ ही समस्या है, जन्म-जन्मान्तर की समस्या है। (स्वगत)—

पूर्व जन्म में भी वे ही थे मेरे जीवन के आधार।
वेही अपनी भक्ति सिखाने बने दिगम्बर कीर्तनकार॥
उनसे ही मिलने को फिर यह लिया गिरिसुता का अवतार।
कृपा–कोर से पुनः करेंगे वेही दासी को स्वीकार॥

(प्रकट)—

ब्रह्मचारि वर, बहुत हो लिया अब न कीजिये वाद विवाद,
वह मेरे हैं—मैं उनकी हूँ, रहे सदा यह प्रेमोन्माद।

शङ्कर—मेरा भी यही आशीर्वाद है–परन्तु—

पार्वती—अतिथिवर, अभी तक आप की परन्तु नहीं गयी?

शङ्कर—हाँ, नहीं गयी, बस एक ही बात और कहनी रह गयी।

पार्वती—कह लीजिये।

शङ्कर—जब आप ने जन्म–जन्मान्तर से शङ्कर को ही अपना वर माना है तो मुझे वर कह कर क्यों सम्बोधित किया?

पार्वती—(ब्रह्मचारी पर गहरी दृष्टि डाल कर) ओह! उस वर का अर्थ-श्रेष्ठ है।

शङ्कर—वर का अर्थ श्रेष्ठ भी है और पति भी। आप जैसी सत्यवक्ता तपस्विनी के मुख से दो बार अपने लिये वर का सम्बोधन सुन कर मुझ में कुछ लालसा उत्पन्न हुई है। यदि प्रेमोन्माद के साथ साथ-आप में दया भी पूर्ण रूप से वर्तमान हो-तो आप तीसरी बार मुझे वर कह कर-मेरी लालसा की पूर्ति कर सकती हैं।

पार्वती—बस, मौन हो जाओ ब्रह्मचारी। मैं ही सती हूं और मैं ही पार्वती। मेरी क्रोध-ज्वाला से डरो। पिछले जन्म में अपने शरीर को अपराधी समझ कर मैं ने भस्म कर डाला। अन्यथा मैं वह महाशक्ति हूं, वह महादेव की अर्द्धांगिनी हूं, जो उस समय भी संसार को भस्म कर सकती थी और आज भी कर सकती है।

शङ्कर—मुझ जैसा ब्रह्मचारी भस्म होने से नहीं डरता।
(बिल्कुल समीप पहुँच जाते हैं)

पार्वती—खबरदार, (कुछ पीछे हट कर) सिद्ध हो गया-हिमालय पर भी रूप के डाकू रहते हैं। तपोबल क्षीण न हो इसलिए-क्रोध न करके मुझे इस स्थान से प्रस्थान करना चाहिये (शीघ्रता से जाना चाहती हैं)।

शङ्कर—(आंचल पकड़कर) कहां प्रस्थान करोगी?

पार्वती--(स्वगत) ओह ! मेरा बांयां अङ्ग क्यों फड़का ? (अपने सामने भी उन्हीं ब्रह्मचारी की मूर्ति देखती हैं) हैं ! इधर भी वही (पीछे की तरफ़ मुंह कर के) और इधर, इधर, (ब्रह्मचारी का शङ्कर रूप में दर्शन देना) कौन ? कौन ? प्राणेश्वर ? (चरण की तरफ़ झुकती हैं)

शङ्कर—(हाथ से उठाते हुए) प्राणेश्वरी ।

पार्वती—मुझे छोड़ दीजिये, आप तो मुझे प्राणेश्वरी न कहने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं ।

शङ्कर—आज निश्चय हो गया-प्रतिज्ञा किसी की भी नहीं रही है । शङ्कर की भी नहीं रही ।

पार्वती—नहीं, यह निश्चय हो गया कि प्राणों की बाज़ी लगा देनेवाले को-प्राणों से भी बड़ी चीज़ अवश्य मिलती है । (मुस्कराती हुई अपनी पूजा की जगह पर जाती हैं और वहां से कुछ फूल लेकर शङ्कर की ओर आती हैं)

शङ्कर—(स्वगत) अहो ! मुद्दत के बाद यह मुस्कान निहारी है, मानों लाल पत्तों पर सफ़ेत रङ्ग के फूल हैं, रक्त मूंगों पर श्वेत मोती हैं ।

पार्वती—प्रियतम (फूल सिर पर चढ़ाती हैं)

शङ्कर—प्रिये (सर झुकाकर फूल स्वीकार करते हैं)

देवता—(अन्तरिक्ष में) महा माता पार्वती और महादेव भगवान् शङ्कर की जय ।

—o—

स्थान—हिमाचलराज की राजधानी का मार्ग

नारद—(प्रवेश करके) नारायण ! नारायण !! नारायण !!! मुद्दतों के बाद अन्तःकरण के गमले में तरी आयी, मनोकामना की रजनीगंधा लहलहाई। यह मैंने ठीक ही किया कि स्वयं शिवजी के पास पार्वती की सगाई सीधी नहीं भिजवायी, बल्कि यह युक्ति लड़ाई कि कामदेव को भस्म करवा कर पार्वती को तपस्या की सुझाई। मेरी इसी सूझ का यह नतीजा है कि बज रही है आज घर घर बधाई, घुट रही है जनवासे में केसरिया ठण्डाई। भोले बाबा ने जैसे ही परीक्षा के बाद सर्वमङ्गला पार्वती अपनायी हमने भी तत्काल ही हिमाचल से कह कर विवाह की तयारी शुरू करायी। (नेपथ्य में बाजों का बजना) यह लो, तुरही, भेरी, ढोल, डमरू, झाँझ, पखावज, के साथ साथ घंटों की आवाज़ भी घनघनायी। मालूम होता है शिवजी की बारात इधर ही आयी। बाराती बने हुए वीणाधारी, तुझे तो इस बारात में बीच ही से शरीक होना है, क्योंकि तुझ पर तो है दोनों तरफ़ की साई (बाजों की आवाज़ और निकट सुनाई देती है) —

मैंने न बरात चढ़ायी है; घर आयी मेरे बारात नहीं ।
पर हूं मैं घराती बाराती, क्या यह हंसने की बात नहीं॥

(बिल्कुल समीप बाजों की आवाज़ सुनकर और नेपथ्य की ओर देखकर) ओहो आगे आगे देवगुरु बृहस्पति जी आरहे हैं ।

(बाजे, झंडियां, आरायश निकलने के बाद हाथी पर बृहस्पति जी का आना और जाना)

नारद—यह सूर्यादि ग्रह आये ।

(सात घोड़ों के रथ पर सूर्य, दस सफ़ेद घोड़ों के रथ पर चन्द्रमा, लाल मेंढ़े के रथ पर मगल, सिंह के रथ पर बुध, श्वेत घोड़े के रथ पर शुक्र, वज्रतुण्ड के रथ पर शनि, काले सिंह के रथ पर राहु, पारावत पर केतु आते और जाते हैं)

नारद—इस बार वरुण, कुबेर, दिग्पाल आदिकों के साथ देवराज इन्द्र आये ।

(ऐरावत हाथी पर वरुण और कुबेर आदि के साथ इन्द्र आते और जाते हैं)

नारद—धन्य ! अब भगवान् विष्णु और वेदों के उद्गाता पिताश्री चतुरानन पधारे ।

(गरुड़ पर विष्णु और हंस पर ब्रह्मा का आना और जाना, नेपथ्य से विशेष प्रकार का कोलाहल सुनाई देना)

नारद—मालूम होता है अब दूल्हा राजा आये, यह उन्हीं की टोली का कोलाहल है ।

शङ्कर के गण—(नाचते गाते हुए प्रवेश करके)—

जय शिव जय शिव जय शिव शङ्कर ।
बम बम बम बम हर हर हर हर ॥

(शङ्कर के गणों का जाना, नंदी पर चढ़े हुए वर वेष में शङ्कर का आना और जाना)

नारद—(स्वगत) अब मुझे भी चलना चाहिये । पर अभी तो बृहस्पति जी विवाह के वरण, वाचा, विष्टर, पाद्य, अर्घ्य आदि कार्य करायेंगे । तब तक लाओ मैं एक कविता बना डालूं । आज तो खुशी के मारे अक़ल की तराज़ू का कांटा डुलायमान हो रहा है (कुछ ठहर कर) भूला, भूला, कविता बनाने के पहले तो-एक बार बराती घराती बनने का अभिनय पूर्ण करना है (नेपथ्य से गाने की आवाज़) हैं ! अब कुछ बालायें मंगलगीत गाती हुई इसी मार्ग से आरही हैं ! शायद यह

हिमाचलराज के यहाँ जा रही हैं। तब तो मुझे भी प्रस्थान करना चाहिये—

वीणा ही सदा बजायी है, बरती है क़लम दवात नहीं।
फिर भी नारद शारद होगा क्या यह हंसने की बात नहीं ॥

(जाना)

बालायें—(आकर)

गाना नं० २२

—:o:—

सखी जटाधारी बना बनि आये।
गंगधार-धारो बना बनि आये ॥
त्रिपुण्ड-धारी बना बनि आये।
त्रिशूल-धारी बना बनि आये ॥
बनखण्डी का निर्मल चेहरा, उस पर बनफूलों का सेहरा।
मानों आधे भाल चन्द्र पर, होते हैं तारे न्योछावर।
डमरूधारो बना बनि आये।
सखी जटाधारी बना बनि आये ॥
तन बाघम्बर जामा सोहै, कर भुजंग-कंकण मन मोहै।
चन्दन भस्मट की छवि छाई, जिसे देख नभ-गंग लजाई।
भस्मीधारी बना बनि आये।
सखी जटाधारो बना बनि आये ॥

—:o:—

(बालाओं का जाना)
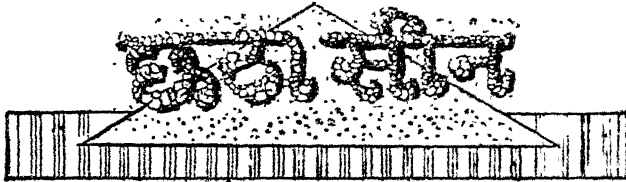
स्थान—विवाह-मण्डप

(ब्रह्मा, विष्णु समेत सम्पूर्ण देवता विराजमान हैं। सूर्यादि ग्रह भी अपने अपने स्थान पर शोभायमान हैं। पुरोहित के स्थान पर वृहस्पति जी विद्यमान हैं। एक ओर महिलायें भी बैठी हुई हैं। दूर से स्त्रियों द्वारा—'सखी जटाधारी बना वनि आये'—गाये जाने की मन्द मन्द ध्वनि आरही है। कन्यादान और अग्नि-परिक्रमा की रीतियाँ पूर्ण हो चुकी हैं)

हिमाचलराज—(खड़े होकर) महामान्य महेश्वर, शास्त्रोक्त रीति से भी पार्वती अब आप की हो गयी। अब तक यह मुझ हिमाचलराज की बेटी थी; अब से आप की-कैलासपति की-अर्द्धाङ्गिनी है। इसे आभूषणों और वस्त्रों से प्यार नहीं है। जन्म ही से सेवा, तपस्या, त्याग और आदर्श प्रेम के देव-दुर्लभ संस्कार लेकर यह हिमालय में उत्पन्न हुई है। आशा है आप इसकी सेवकाई से संतुष्ट होंगे। मेरे अनुरोध से नहीं

तो इसकी प्रेम-परिचर्या को देख कर इस के अपराध क्षमा करते रहियेगा। यह ध्यान रहे नीलकण्ठ, मैनानन्दिनी का हृदय बड़ा कोमल है। हिमाचल ने इस लाड़िली को बड़े प्यार दुलार से पाला है—

शिव त्रिभुवन के भण्डारी हैं-कब उन्हें दहेज वाँछित है।
जो सबको सब कुछ देते हैं-कुछ भेंट न उनको समुचित है॥
हो सरस्वती का वास जहाँ लक्ष्मी उस जगह संकुचित है।
कुटिया बुहारने को भगवन्, अनुचरी आपके अर्पित है।

ब्रह्मा—(खड़े होकर) आदरणीय हिमाचलराज, आपने बहुत कुछ दिया है। आप की पार्वती वह अद्वितीय रत्न है जिसकी समता धराधाम में तो क्या; देवमण्डल में भी दुष्प्राप्य है। संसार की स्त्रियाँ इसका नाम लेकर और इसकी पति-सेवा का अनुकरण कर--चारों पदार्थ पायेंगीं, कल्याणी बन जायँगीं। जिसने स्वयं अपनी तपश्चर्या के पुरुषार्थ से-देवाधिदेव महादेव को प्राप्त कर लिया-वह भवानी, वह रुद्राणी, भव की-रुद्र की-अनुचरी नहीं--सहचरी है। साक्षात् महाशक्ति है—

मेनकात्मजा कहो न इस को-यह ईश्वरी अम्बिका है।
जन्म जन्म की शिवार्द्धाङ्गिनी, सिंहवाहिनी दुर्गा है।
विश्वनाथ की प्रिया, चण्डिका,विश्वकारिणी आर्या है॥

नारद—(आकर)—

त्रिभुवन जिस को सर झुकाय वह त्रिभुवनधात्री गिरिजा है॥

विष्णु—आइये, आइये, आप ही की इस समय कमी थी। आज तो वीणा में से कोई खास तान निकलनी चाहिए।

कुवेर—वीणा की तान के साथ साथ वीणाधारी का समयानुकूल गान भी तो होना चाहिए।

इन्द्र—अजी गवाना क्या,-आज तो इन्हें नचाना है।

ब्रह्मा—(बृहस्पति से) आचार्य देव, संस्कार हो गया, मेरे विचार से, वर वधू को अब अन्तः पुर में जाना चाहिए।

आचार्य—तथास्तु (शङ्कर और पार्वती का उठना, आचार्य तथा सूर्यादि ग्रहों का उठकर आशीर्वाद देना) शुभमस्तु, कल्याणमस्तु।

नारद—शङ्कर प्रवर और शिवगोत्र वाले भगवान् स्मरहर, तस्यात्मज भगवान् पुरहर, तस्यात्मज भगवान् संहर, तस्यात्मज भगवान् हर को--गौरी के साथ देख कर--यह वीणाधारी भी कहता है—'सदा प्रसन्नमस्तु'।

(शिव पार्वती का अन्तःपुर में जाना, उनके जाने के कुछ क्षण बाद विष्णु के संकेत से गरुड़ का भी पीछे पीछे जाना, नारद का यह भाँप लेना)

इन्द्र—भई वाह! नारद जी का 'सदा प्रसन्नमस्तु' तो आचार्य देव का शाखोच्चार ही हो गया।

कुवेर—अच्छा, अब तान छिड़नी चाहिए, गान होना चाहिए।

इन्द्र—(नारद से) क्या सोच रहे हो देवर्षे ?

नारद—कुछ न पूछो !

इन्द्र—क्या जनवासे के ज्यादा सुखों और महा स्वादिष्ट भोजनों के कारण आलस्य और अजीर्ण तो नहीं होगया है ?

नारद—आलस्य और अजीर्ण के दोष तो स्वर्ग के जल वायु में हैं, हिमालय में नहीं। और हम जैसे घुमक्कड़ों के लिये तो कहीं भी नहीं।

विष्णु—(आहिस्ता से) देवर्षे ! पितामह उपस्थित हैं, ज्यादा विनोद-लीला जनवासे में ठीक है।

नारद—विनोद-लीला मैं कर रहा हूँ या गरुडध्वज ? खड़े खड़े यही तो सोच रहा था कि सर्पों के भूषणवाले दूल्हा राजा—जब अन्तःपुर में जाने लगे--तो आपने इशारा देकर पीछे-पीछे गरुड़ को क्यों रवाना किया ? यदि वहाँ स्त्री-समाज में गरुड़ को देखकर--दिगम्बर के शरीर पर लिपटे हुए सर्प खिसक खिसक कर भाग जायँगे--तो क्या उस समय दिगम्बर सचमुच दिगम्बर नहीं होजायँगे ?

विष्णु—दिगम्बर कैसे होजायँगे—जब बाघम्बर पहने हुए हैं ? गरुड़ध्वज का विनोद सीमा तक ही होता है, अधिक नहीं। दिल्लगी हो गयी, अब गायन गाइए।

नारद—तब तो आप भी थोड़ी देर के लिए गम्भीर हो जाइए और सम्पूर्ण देव-समाज को-इस समय यह बताइए कि शिव वास्तव में कौन हैं ?

विष्णु—शिव ? कौन हैं ? शिव इस मर्त्यलोक के महादेव हैं। मैं तो साकेतवासी के नाते से-कभी कभी इस मर्त्यलोक में रामादि अवतार लेकर आया करता हूँ-परन्तु शिव सर्वदा यहीं रहते हैं, और यहां के भी सबसे बड़े पर्वत हिमालय की-सबसे ऊँची चोटी कैलास पर रहते हैं। कैलास पर रहते हुए भी वे कभी कभी-कनखल में दक्षेश्वर, काशी में विश्वेश्वर, नर्मदा के किनारे ओंकारेश्वर और समुद्र के किनारे रामेश्वर के रूप में प्रकट होते हैं। इसका कारण यही है कि वे इस पृथ्वीमंडल के देवाधिदेव हैं। तभी तो अनेकानेक नाम रखकर-पृथ्वीमण्डल के निवासी-अपने देवाधिदेव की पूजा किया करते हैं ? स्पष्ट घोषणा करता हूँ कि-रामादि रूप में अवतार लेने के कारण मैं भी-अवतारी हो सकता हूँ; देवता नहीं। देवता तो संसार के शिव ही हैं। इसीलिये शिव का आराधन होता आया है-हो रहा है और होता रहेगा। फिर, शिव वास्तव में कौन हैं ? इसका उत्तर तो यही है कि शिव ज्ञानरूप, सत्यस्वरूप, सबके साक्षी, सर्वान्तर्यामी, और सर्वोपरि हैं। डोरे में जिस तरह फूल पुहे रहते हैं और फूलों में जिस तरह डोरा पुहा रहता है-उसी प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि में शिव हैं और शिव में सम्पूर्ण सृष्टि है:-

आदौ मध्ये शिवश्चैव अन्ते शिव उदाहृतः ।
सर्वं शिवमयं चैतच्छिवः सर्वमयस्तथा ॥

नारद—धन्य प्रभु । अब पार्वती के सम्बन्ध में भी कुछ कह दीजिये ।

विष्णु—पार्वती ? पार्वती इस धराधाम की महादेवी हैं। कितना ही बड़ा देवता क्यों न हो--उसका कार्य शक्ति के बिना चल सकता ही नहीं । इसी दृष्टि से--ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी और विष्णु के साथ लक्ष्मी का संयोग है । मनुष्य जड़ है यदि उसमें ज्योति न हो, पुरुष अधूरा है यदि उसके साथ प्रकृति न हो। शिव का आधा भाग पार्वती कहलाता है, शिव के साथ पार्वती का होना ही शिव को सम्पूर्ण बनाता है। शिव की तरह पार्वती भी कहीं ज्वालामुखी, कहीं काली, कहीं कामाक्षा और कहीं अन्नपूर्णा के रूप में दिखाई देती हैं। यही कारण है कि इस देश का पुरुषदल--शङ्कर की पूजा और स्त्री-समाज पार्वती की आराधना करने लगा है--और करता रहेगा। शिव की पूजा का फल ब्रह्म तत्त्व की प्राप्ति और पार्वती की आराधना का फल सांसारिक सुख की वृद्धि है। अब रही यह बात कि पार्वती यथार्थ में कौन हैं--तो यथार्थ में पार्वती भी शिव की तरह ज्ञानमयी, सत्यमयी, पुण्यमयी, तेजोमयी और सम्पूर्ण सृष्टिमयी हैं। इसी से मैं ही नहीं, सारा संसार उन्हें इन शब्दों में नमस्कार करता है-

सिंहवाहिनी नन्दीवाहन, खड्ग त्रिशूल सुकर ।
शिवा शिव खड्ग त्रिशूल सुकर ।
पाटम्बर बाघम्बर, पाटम्बर बाघम्बर ।
मणि अहि भाल सुघर, जय जय गौरी शङ्कर ॥
'राधेश्याम' प्रकृति परमेश्वर सुखकारी दुखहर ।
शिवा शिव सुखकारी दुखहर ।
जय श्री सिद्धिदायिनी, जय श्री सिद्धिदायिनी ।
ॐ श्री सिद्धेश्वर, जय जय गौरी शङ्कर ।

—०—

(साट फटकर ओंकार के भीतर पार्वती और शङ्कर का दर्शन)

सब—जय, जय, सती पार्वती और कैलासपति भगवान् शङ्कर की जय ।

इति.